साङ्ख्यतरङ्गिणी

साहित्याचार्य श्री पण्डित अम्बिकादत्त व्यास
विरचित भाषाटीका सहित साङ्ख्य-
तत्त्वकौमुदी की कारिका ।

पीयूषप्रवाह मासिकपत्र में उद्धृत कर के
महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह द्वारा
प्रकाशित ।

खड्गविलास प्रेस—बांकीपुर ।

साहबप्रसादसिंह ने मुद्रित किया ।

१८९१

साङ्ख्यतरङ्गिणी

साहित्याचार्य श्री पण्डित अम्बिकादत्त व्यास
विरचित भाषाटीका सहित साङ्ख्य-
तत्त्वकौमुदी की कारिका।

पीयूषप्रवाह मासिकपत्र से उद्धृत कर के
महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह द्वारा
प्रकाशित।

खड्गविलास प्रेस—बांकीपुर।

साहबप्रसादसिंह ने मुद्रित किया।

१८९१

५०] [दाम ।) आना।

129/4

प्रकाशक का निवेदन ।

सन १८८२ में साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने इस ग्रन्थ की रचना कर अपनी मासिकपत्रिका वैष्णवपत्रिका में प्रकाशित करना आरम्भ किया था। कुछ काल के अनन्तर वैष्णव-पत्रिका किसी कारण से पीयूषप्रवाह के नाम से प्रचलित हुई। और उस में भी बीच बीच में यह ग्रन्थ छपता गया और ५२ कारिका तक उसमें छपा। फिर हिन्दीभाषा के उत्साहियों की विलक्षण उदारता से वह पीयूषप्रवाह बन्ध हो गया और तीन बरस तक हमलोगों के टकटका के ताकने पर उस के उद्धार का दिन अब आया और वह फिर निकलने लगा। पर इधर देखा कि इस ग्रन्थ के देखने की बहुतों की लालसा है तब अन्तिम भाग ग्रन्थकार की लिखी कापी से ले मैंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है आशा है कि दर्शनों के रसिक लोग इस से अवश्य ही प्रसन्न होंगे।

२५ । ११ । ९०

बांकीपुर।

निवेदक

रामदीन सिंह ।

भूमिका ।

साङ्ख्य ।

यह बड़ा प्राचीन दर्शन है, इस दर्शन के जानने से अनेक विषयों में काम निकलता है और विष्णुस्वामिसम्प्रदाय मध्व सम्प्रदाय प्रभृति तो विशेष करके साङ्ख्यही पर निर्भर हैं साङ्ख्य में भी प्रपञ्च सत्य है और सत्कार्य वाद है इसलिये वैष्णव मत में इसके साधन के लिये नई युक्ति नहीं ढूंढ़नी पड़ती गौड़ सम्प्रदायादि के द्वैतादि स्थापन की युक्तियों के लिये, इस दर्शन के जानने पर नया प्रबन्ध नहीं करना पड़ता।

कापिल और पातञ्जल ये दोनों शास्त्र इकट्ठे "साङ्ख्य" कहलाते हैं * यदि पातञ्जल के लिये न अभिप्राय हो तो केवल कापिल के लिये भी प्रायः साङ्ख्य पद का प्रयोग होता है जब साङ्ख्य पद से केवल कापिल का तात्पर्य होता है तब पातञ्जल को योग कहते हैं।

साङ्ख्य दर्शन दो प्रकार का है निरीश्वर और सेश्वर † ऐसा जान पड़ता है कि कापिल सूत्र षड़ध्यायी पहिले से बनी है वर नास्तिकों ने उसे निज उपयोगी समझ अपनी ओर लगाया है और आस्तिकों ने अपनी ओर।

साङ्ख्य पद का अर्थ भी अनेक महाशय भिन्न २ प्रकारों से करते हैं। विशेषत: "सङ्ख्या" से साङ्ख्य शब्द बना है ऐसा

---

* गी० साङ्ख्ययोगौ पृथग्बाला: प्रवदन्ति न पण्डिता:।

† हरिभद्रसूरिकृतषड्दर्शनसमुच्चय में लिखा है (साङ्ख्यानिरीश्वरा: केचित् केचिदीश्वरदेवता:)

लोग कहते हैं । पर चरित्रसिंहगणी एक जैन थे उन ने लिखा है * कि पूर्व में कापिल दर्शन के बड़े विद्वान् एक हो चुके हैं जिनका नाम सङ्ख अथवा शङ्ख था उन्हीं ने इस दर्शन को फैलाया इसलिये साङ्ख्य अथवा शाङ्ख्य कहलाया ॥

पद्मपुराण के पाषण्डोत्पत्तिप्रकरण में लिखा है कि "तामस, कपिल और शङ्ख एकही प्रकार के थे" इस कथानक से भी पूर्व के लेख में साहाय्य मिलता है ॥

विज्ञानभिक्षु ने साङ्ख्यप्रवचनभाष्य में लिखा है कि "विवेक से आत्मा के निरूपण को सङ्ख्या कहते हैं वह जिस में हो सो साङ्ख्य" ꣸

साङ्ख्य तत्व विलास × में रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य ने लिखा है कि "पचीस तत्वों के विचार का नाम सङ्ख्या है इसी लिये यह साङ्ख्य कहलाया"।

+ "गीता भाष्य में स्वयं शङ्कराचार्य" ने कहा है कि "सत्व

---

* हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय की व्याख्या में चरित्रसिंहगणी का यह लेख है " साङ्ख्यमिति कापिल दर्शनम् आदि पुरुष निमित्तेयं संज्ञा" थोड़ी दूर बढ़ के फिर "साङ्ख्य इति पुरुष निमित्तेयं संज्ञा । सङ्खस्य इमे साङ्ख्याः । तालव्यो वा शकारः । शङ्खनामाऽऽदि पुरुषः" ।

꣸ सा० प्र० भा० "सम्यग्विवेकेनात्मकथनम्" ।

× सा०त०वि० "पञ्चविंशतितत्वानां सङ्ख्या विचारः तम-धिकृत्य कृतो ग्रन्थः साङ्ख्य इति साङ्ख्यपदव्युत्पत्तिः सङ्गच्छते" ।

+ गी० भा० "साङ्ख्यं नाम इमे सत्वरजस्तमांसि गुणा मम दृश्या अहं तेभ्योऽन्यस्तद्व्यापारसाक्षिभूतो नित्यो गुणविलक्ष-

रज और तम इन तीनों गुणों का साक्षी मैं इनसे परम भिन्न विलक्षण और नित्य हूं, इसी चिन्तन को साङ्ख्य कहते हैं" ॥

साङ्ख्यतरङ्ग में देवतीर्थ स्वामी लिखते हैं कि "जिसमें क्रम से निरूपण हो उसे सङ्ख्या कहते हैं इसी के अधिकार से यह साङ्ख्य कहलाता है"*

विष्णुसहस्रनाम की व्याख्या में शङ्कराचार्य ने "महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः" इस श्लोक पर लिखा है कि "शुद्धात्मतत्वविज्ञान को साङ्ख्य कहते हैं" औ इसी अर्थ पर व्यासस्मृति का प्रमाण भी दिखलाया है † इत्यादि

यद्यपि एशियाटिक सोसाइटी के प्रधानों में से एक फिंस-एड्वर्ड हाल साहब ने लिखा है कि जिस समय गीता का उपदेश भगवान् ने अर्जुन को किया है उस समय विद्या का कुछ कुछ प्रकाश होना आरम्भ ही था इसलिये यह कहना भूल है

ण आत्मेति चिन्तनम्" ।

* सा० त० "कस्मात् साङ्ख्यमित्युच्यते? सम्यक् क्रमपूर्वकं ख्यानं कथनं यस्यां सा सङ्ख्या क्रमपूर्वा विचारणा । तामऽधिकृत्य कृतं तस्मात् साङ्ख्यमित्युच्यते शास्त्रम् ॥"

† वहां यह लेख है "महर्षिः कपिलाचार्य इति सविशेषणमेकं नाम, महांश्चासावृषिश्चेति महर्षिः कृत्स्नस्य वेदस्य दर्शनात्। अन्ये तु वेदैकदेशदर्शनादृषयः । कपिलश्चासौ साङ्ख्यस्य शुद्धात्मतत्वविज्ञानस्याऽऽचार्यश्चेति कपिलाचार्यः । महर्षिश्चासौ कपिलाचार्यश्चेति महर्षिकपिलाचार्यः । "शुद्धात्मतत्वविज्ञानं साङ्ख्यमित्यऽभिधीयते" इति व्यासस्मृतेः । ऋषिं प्रसूतं कपिलं महान्तमिति श्रुतेः । सिद्धानां कपिलो मुनिरिति स्मृतेश्च ।

कि भगवान ने साङ्ख्ययोग वेदान्त की चुनी चुनी बातों का उ-पदेश किया, किन्तु उनने स्वतन्त्र कुछ उपदेश किया उसी को दार्शनिक लोग घींच २ अपनी २ ओर लगाने लगे। तथापि मैं यह कभी नहीं स्वीकार कर सक्ता कि उस समय विद्या का कुछही कुछ प्रकाश होने लगा था विशेष न था।

क्या जिस समय, वर्णाश्रमधर्मनिरूपणपूर्वक सब प्रकार के गुण औ दोषों को दिखलाते हुवे सहस्रों रमणीय उपदेशों से भरे अठारह पुराण, महाभारत तथा स्मृति सूत्रादि के रचन का अलौकिक कृत्य करने वाले वेदव्यासजी थे उस समय विद्या का थोड़ा प्रकाश था?

क्या जिस समय साठ सहस्र ६०००० विद्वानों ने इकट्ठे हो कर समाज किया था औ व्यास ऐसे आचार्य के शिष्य सूत ऐसे महाप्रवक्ता वक्तृत्व करते थे औ वे लोग आदर पूर्वक जी लगा २ सुनते थे उस समय विद्या का प्रकाश न्यून था औ अब शास्त्रीय वक्तृत्व सुनने को सौ १०० उत्साही मिलना भी कठिन है सो अभी विद्या अपनी उन्नति पर है?

क्या जिस समय भीम ऐसे पाकविद्या तथा मल्लविद्या के पारङ्गत औ नकुल, सहदेव ऐसे अश्वारोहविद्यानिधान औ भीष्माचार्य ऐसे वीर, धीर औ ऐतिहासिक औ कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, तथा अश्वत्थामा ऐसे शास्त्र विद्या के सूर्य, का प्रताप दिगन्त में व्याप्त था उस समय अन्धकार था औ अब किसी को इन विद्याओं का स्वप्न भी नहीं आता सो कहियेगा कि अभी विद्या का पूर्ण प्रकाश है?

चित्रलेखा ने वाणासुर की बेटी ऊषा को बात की बात में

संसार भर के प्रधान प्रधान महाशयों की ठीक ठीक मूर्त्ति लिख दिखाई औ कहा कि जिस पर तेरा जी लगा हो उसे चीन्ह ले। दुर्योधन ने एक घर बनवाया उसमें इस प्रकार से लाह का काम करवाया कि किसी को विदित भी न हो और चुपके से किसी ओर से जलाने में एका एकी सब का सब भहराय पड़े। भीम ने अपने गढ़ के चारों ओर एक घेरा इस प्रवन्ध से बांधा था कि शत्रु की सेना वहां आतेही भस्म हो जाय। उसी के एक घेरा पाश का और दूसरा शस्त्र का भी था, पाश के घेरे में इस चतुराई से सांकलें लगाई थीं कि शत्रुगण वहां आतेही उसी में बँध कर फस जायँ, शस्त्रवाले में खड्ग, कटारी, बरछी आदि इस कौशल्य से लगी थीं कि आतेही शत्रुओं के टुकड़े २ हो जायँ। क्या इस प्रकार की उस समय की शिल्पादि विद्याओं की उन्नति जान के भी फिर कहियेगा कि तब विद्या का प्रकाश नहीं था और अब है?।

बस, भारत, अग्निपुराण तथा मत्स्य पुराण देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय कौन २ विद्या कैसी २ उन्नति पर थीं यहां विशेष लिखने से कुछ प्रयोजन नहीं।

पर हां यह हम भी अवश्य कहैंगे कि पुस्तकों के अति सुलभ होने का प्रधान कारण छापा तो बहुतही थोड़े दिन से निकला है * और "कागद" के प्रचार हुये भी बहुत दिन नहीं हुए इसके पूर्व तालपत्र पर और कभी२ चमड़े की झिल्ली पर

* जर्मनी में मयेन्सी Mayence नगर के रहने वाले जान गटनबर्ग John Guttenborg ने १४३७ ईसवी में टाइप छापने की विद्या निकाली।

लिखते थे पर उसके भी पूर्व समय में लोग लिखतेही बहुत नहीं थे वे ऐसे गम्भीर बुद्धिमान् थे कि केवल कान से सुननाही उनका पढ़ना था और उपदेश करनाहीं पढ़ाना था, उन लोगों की धारणाशक्ति इतनी थी कि केवल हृदय को पुस्तकालय बनाये रहते थे। अतएव शुकाचार्य ने परीक्षित की सभा में अथवा सूत ने कुरुक्षेत्र वाले ऋषि समाज में पोथा नहीं खोला था पर उनको वंशावली तथा अन्यान्य चरित इतने ठीक २ बुद्धिस्थ थे कि प्रश्न के अनुसार बराबर कहते जाते थे।

अब यह स्पष्ट हुआ कि पूर्व में विशेषत: पुस्तक प्रचार के न होने से और मध्य में राज्य विप्लव में सहस्रश: ग्रन्थ नदियों में फेंके गये और बड़ी २ ज्वालाओं में जलाये गये इस कारण से अब प्राचीनतम ग्रन्थ कम मिलते हैं और अतएव भगवद्गीता के पूर्व के विशेष साङ्ख्य ग्रन्थ नहीं मिलते हैं, दूसरी बात नहीं। हां न्याय की अवच्छेदकता प्रकारता के विषय में कोई कहे तो हम भी स्वीकार करते हैं कि ये अब इन्हीं दिनों बहुत फैली हैं। पर साङ्ख्य;वेदान्त, जिसके बाहुल्य के साक्षी भगवद्गीता, भागवत एकादश, भारतीय सनत्सुजात प्रभृति अनेकाऽनेक उपस्थित हैं, पूर्व में अविस्तृत था यह कभी नहीं मान सकते हैं॥

अब यह भी बड़े सोचने की बात है कि साङ्ख्य का प्रथम प्रचारक कौन था ? यह तो प्रसिद्धही है कि कपिल थे। इन्हीं ने निज माता को उपदेश किया सो भी भागवत में स्पष्टही है। पर साङ्ख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण ने कपिल का नाम भी नहीं लिखा है केवल ६९ और ७० वीं कारिका में महर्षि और मुनि पद दिया है परन्तु साङ्ख्य तत्वकौमुदीकार श्रीवाचस्पति मि-

य * ने आरम्भ में भी कपिल को प्रणाम किया है † और उन कारिकाओं की व्याख्या में भी कपिल का नाम लिखा है।

महाभारत तथा स्कन्दपुराण से सिद्ध होता है कि साङ्ख्य और योग दोनोंहीं के आदि प्रचारक श्रीशिव जी हैं। परन्तु यदि पद्मपुराण के विष्णुभेदव्यूहवर्णन के अध्याय में देखते हैं + तो वहां श्वेतद्वीपनिवासी श्रीनारायणही साङ्ख्य योग के आदि प्रवर्त्तक ठहरते हैं।

अस्तु यदि ऐसाही मान लेते हैं कि आदि प्रचारक शिव और नारायण हैं पर जीर्णोद्धार कपिल जी ने किया। तो भी अनेक कपिलों के होने से हमारा यह भ्रम रहाही आता है कि उनमें से किसने साङ्ख्य का प्रचार किया और कौन सा ग्रन्थ बनाया।

---

* वाचस्पति मिश्र मिथिला देश के रहनेवाले मैथिल थे पर ऐसे विद्वान् थे कि छवों दर्शन पर टीका करी है और जिस दर्शन पर लिखने लगे वहां तद्रूप ही होगये हैं। वस्तुत: इनका लेख बड़ा गम्भीर और प्रौढ़ है। मिथिलाधीश के राज्योत्सव में एक सामवत नामक नाटक मैंने बनाया है चिरकाल हुआ उसमें प्रसङ्गतः इनके विषय में यह श्लोक लिखा है (अदर्शनं त्वेष गतोऽस्ति विद्वान् यशःपयःपाचितभूप्रदेशः। तथापि सर्वान् सुखयन्ति तेन षड् दर्शनानि प्रकटीकृतानि)

† सा० त० कौ० (कपिलाय महामुनये मुनये शिष्याय तस्य चासुरये। पञ्चशिखाय तथेश्वरकृष्णायैते नमस्यामः)

+ वहां यह श्लोक है [श्वेतद्वीपपतिः साङ्ख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट्। विश्वप्रकाशितज्ञानयोगो मोहतमिस्रहा]

पद्मपुराण के पाताल खण्ड की ६७ अध्याय में तो लिखा है कि † तृणविन्दु की बेटी देवहूति में तो कर्दम के केवल दृष्टिपात मात्र से दो पुत्र भये उनमें एक जय दूसरा विजय पर एक दूसरी स्त्री में कपिल हुवे ये बड़े योग जानने वाले थे ॥

श्री भागवत द्वि० स्कं० ७ अ० श्लो० ३ में लिखा है + कि स्वायम्भुव की बेटी देवहूति से कर्दम के यहां कपिल हुवे औ इन के ९ बहिनें भी हुईं । फिर उनमें निज माता देवहूति को बड़ा उपदेश किया सो तृतीय स्कन्ध में २५ वीं से ३३ वीं अध्याय तक संवाद भी लिखा है ॥

बस पुराणों के मतभेद लिखते तो जी अनसा जाता है कोई कहां तक लिखे , फिसु एड्वर्ड हल् साहब के लेखानुसार ‡ विदित है कि ब्रह्मा के ७ मानस पुत्रों में से एक जने कपिल थे यह विष्णुपुराणादि के सम्बन्ध से विदित होता है ॥

धर्म की स्त्री हिंसा थी उसमें आठ पुत्र हुवे सनत्कुमार सनातन, सनक, सनन्दन, कपिल, वोढु , आसुरि और पञ्चशिख यह वामन पुराण का अभिप्रेत जान पड़ता है । इत्यादि

---

† श्लोक (तृणविन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज । कर्दमस्य तु दृष्टैव पुत्रौ द्वौ सम्बभूवतुः ॥ १ ॥ ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चेति नामतः । अन्यस्यामऽभवत्पश्चात् कपिलो योगधर्मवित्)

+ [जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे । ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्क मास्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे]

‡ उक्त साहब ने साङ्ख्यसार की भूमिका अंगरेजी में लिखी है वहां से कई बातें उठा के इस भूमिका में भी लिखी गई हैं ।

जो कुछ हो पर इतने से यह तो भली भांति सिद्ध हुवा कि कपिल एक नहीं हुवे हैं अनेक हो हैं पर उन में भी प्रधान दो हैं एक नारायण के अवतार दूसरे अग्नि के क्योंकि भागवत ही में २४ अवतारों में एक अवतार कपिल को गिनाया है महाभारत* से कपिल अग्नि के अवतार जान पड़ते हैं। कोई कहते हैं उनी का रंग पीला था इस लिये कपिल कहलाये, और कोई कहते हैं कि सहस्रों सगर के पुत्रों को जला दिया इस लिये अग्न्यवतार कहलाये। और लोग कहते हैं कि जिन्हे अग्नि के अवतार कहते हैं वे ही एक कपिल हुवे हैं पर प्रतापी होने से भगवत्स्वरूप कहलाये। जैसे गीता में भगवान ने कहा है कि ऋषियों में कपिल मैं हूं।

कपिल के प्रधान शिष्य आसुरि थे यद्यपि हम कह सक्ते हैं कि आसुरि कपिल के भाई थे+

तथापि और प्रमाणों से यह बात सिद्ध नहीं होती॥ कपिल ने आसुरि को पढ़ाया ↑

* " अग्निः स कपिलो नाम साङ्ख्यशास्त्रप्रवर्त्तकः "

+८ वां पृष्ठ देखो,

↑भा॰स्कं॰ १ अ॰३ श्लो॰१०॥(पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचासुरयेऽऽसाङ्ख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम्) इस पर श्रीधर जी लिखते हैं (आसुरये तन्नाम्ने ब्राह्मणाय) और पातञ्जलसूत्र॰ १ पाद॰ २५ सू॰ भाष्य में व्यास भगवान ने यह वचन लिखा है (आदि विद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच) व्याख्या कारों ने लिखा है कि यह वाक्य पञ्चशिख का है॥

आसुरि स्वयं साङ्ख्यदर्शन के ग्रन्थकार होगये हैं पर अब उनके ग्रन्थ नहीं मिलते* इनके शिष्य पञ्चशिख नामक ऋषि थे† जिन ने कुछ साक्षात् कपिल से भी पढ़ा था+ पञ्च शिख के शिष्य परम योगिराट् जैगीषव्य नामक थे ऐसा पता लगता है कि पञ्चशिख ने भी इस दर्शन पर सूत्र बनाये हैं÷ और तत्व

---

* केवल चरित्र सिंहगणी ने अपनी षड्दर्शनसमुच्चय की व्याख्या में लिखा है कि यह श्लोक आसुरि का है " विविक्तं दृक्परिणतौ बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते । प्रतिबिम्बोदयः स्वच्छे यथा चन्द्रमसोऽम्भसि ॥"

† यह महा भारत पर्व १२ अध्याय ७८८० और ७८८५ तथा साङ्ख्यतत्वकारिका ७८ में स्पष्ट है ।

+ यह गौड़पाद के लेख से झलकता है ।

यह कूर्म पुराण से प्रगट होता है ।

÷ पातञ्जल १ पाद ४ सूत्र की व्याख्या में व्यास भगवान् ने लिखा है कि (तथाच सूत्रम् एक मेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् इति) क्षेमानन्द ने तत्वसमास की टिप्पण में दो बेर इसी को सूत्र करके लिखा है और वाचस्पतिमिश्र, विज्ञानभिक्षु तथा नागोजी भट्ट ने इसे पञ्चशिखकृत माना है ॥ साङ्ख्यतत्वकौमुदी में द्वितीय कारिका की व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने लिखा है "यथाहऽऽस्म भगवान् पञ्चशिखाचार्यः स्वल्पः स ङ्करः सपरिहारः सप्रत्यऽवमर्ष इति " यद्यपि यहां यह नहीं सूचित होता कि यह सूत्र है कि नहीं तथापि भक्तिचन्द्रिका में नारायणतीर्थ ने लिखा है कि " स्वल्पः सङ्करः सपरिहार " एक सूत्र है और "सप्रत्यवमर्षः " दूसरा है ।

समाससूत्र× पर भाष्य भी किया है=

और सङ्ख्यप्रवचन ही की पञ्चम अध्याय का बत्तिसवां सूत्र पञ्चशिख के अन्यमत का सूचन करता है*

× तत्त्वसमास में केवल बाईस सूत्र हैं, थोड़े हैं और उपयोगी हैं इस लिये यहां लिख देते हैं ("अथातस्तत्त्वे समासः १ कथयामि अष्टौ प्रकृतयः । २ । षोडशकस्तु विकारः । ३ । पुरुषः । ४ । त्रैगुण्यम् । ५ । सञ्चरः प्रतिसञ्चरः । ६ । अध्यात्ममधिभूतमधिदैवञ्च । ७ । पञ्चाभिबुद्धयः । ८ । पञ्च कर्मयोनयः ९ पञ्च वायवः । १० । पञ्चकर्मात्मानः ।११। पञ्चपर्वा अविद्याः १२ अष्टाविंशतिधाऽशक्तिः । १३ । नवधा तुष्टिः । १४ । अष्टधा सिद्धिः । १५ । दशमूलिकाऽर्थाः । १६ । अनुग्रहः सर्गः । १७ । चतुर्दशविधो भूतसर्गः । १८ । त्रिविधो बन्धः । १९ । त्रिविधो मोक्षः । २० । त्रिविधं प्रमाणम् । २१ । एतत् सम्यग् ज्ञात्वा कृतकृत्यः स्यात् न पुनस्त्रिविधेन दुःखेनाऽनुभूयते । २२ ।")

=विज्ञानभिक्षु ने अपनी ब्रह्म सूत्र व्याख्या में "आद्यस्तु मोक्षो ज्ञानेन द्वितीयो राग सङ्क्षयात् । कृच्छ्रक्षयात् तृतीयस्तु, व्याख्यातं मोक्षलक्षणम्" यह श्लोक लिख के लिखा है कि "त्रिविधं मोक्षं कर्मेणाह तत्त्वसमासाख्य भाष्ये पञ्चशिखाचार्यः" इससे ठीक जानपड़ता है कि बीसवें सूत्र पर उनने लिखा होगा और भावा गणेश के लेख से भी यह स्पष्ट भान पड़ता है कि पञ्चशिख ने व्याख्या की है। उनने तत्वयाथार्थ्यदीपन के आरम्भ में लिखा है "समास सूत्रमाऽलम्ब्य व्याख्यां पञ्चशिखस्य च । भावा गणेशः कुरुते तत्त्वयाथार्थ्यदीपनम्"

* सा० अ० ५ सू० ३२ "आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः"

अब कौन सूत्र नारायणऽवतार कपिल ने बनाये इसको ढूंढ़ के सङ्कृत करना तो सहस्रों वर्ष के उजड़े और ढहे प्रदेश के कंकड़ सूंघ और ईंटें गिन के कहां ब्राह्मण रहते थे कहां क्षत्रिय रहते थे और कहां क्या था इसकी व्यवस्था लगाना है अथवा भाड़ में बैठे रोगी के हाथ में बांध गली में लटकाये हुवे डोरे को पकड़ रोगी के रोगों का अनुभव करना है । क्योंकि प्राचीन ग्रन्थ बिलकुल लुप्त हो गये जिनके देखने से हम लोग कुछ कुछ पता लगा सकें। विज्ञान भिक्षु जी ने साङ्ख्यप्रवचनभाष्य के आरम्भ में लिखा है कि काल पा के साङ्ख्यशास्त्र सब नष्ट हो कला मात्र रह गया है †

यदि हम सोचते हैं कि तत्वसमास सूत्र तथा साङ्ख्यप्रवचन सूत्र किसके बनाये हैं तो ऐसे ही प्रमाण मिलते हैं कि एक बेर तो संशय समुद्र में डाल ही देते हैं । कौमुदीप्रभा कार स्वप्नेश्वर तो लिखते हैं कि* पञ्चशिख ही ने सूत्र बनाये हैं और केवल कपिलसम्प्रदाय है इसलिये कापिल कहलाते हैं जैसे भृगु की कही संहिता के लिये मनु का प्रयोग होता है ।

सर्वोपकारिणी में लिखा है कि † तत्वसमाससूत्र नारा-

---

† सा॰ प्र॰ भा॰ श्लो॰ ५ "कालार्कभक्षितं साङ्ख्यशास्त्रं ज्ञानसुधाकरम् । कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोमृतैः" ।

* "पञ्चशिखः सूत्रकार आसुरिशिष्यः कापिलमिति प्रसिद्धिस्तु भृगुप्रोक्तसंहितायामिव मनुसमाख्या" ।

† इस ग्रन्थकार का नाम नहीं विदित है इसका लम्बा लेख साङ्ख्यसार के प्रकाशक ने टिप्पण में लिखा है उसी का एक टुकड़ा यह है "सूत्र षड्ध्यायी तु वैश्वानरावतार भगवत्-

यथावतारकपिल कृत हैं समालोचन करने से यह विदित होता है कि पञ्चशिख ने सूत्र बनाये इसमें कोई संशय नहीं क्योंकि वाचस्पतिमिश्रप्रभृति इसके साक्षी हैं परन्तु साङ्ख्यप्रवचन-नामक सूत्रषड़ऽध्यायी उनकी बनाई है यह हम कदापि नहीं कह सकते क्योंकि वाचस्पतिमिश्रप्रभृति जिनको पञ्चशिखकृत सूत्र समझ के उद्धृत करते हैं वे इसमें नहीं मिलते ‡।

अब यह हम नहीं जान सकते कि कपिल से कितनी शिष्य परम्परा के अनन्तर ईश्वरकृष्ण की पारी आई। पर इनकी बोल चाल से ये प्राचीनहीं प्रगट होते हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गलाचरण करना अथवा गुरु प्रभृति को प्रणाम करना यह प्राचीन चाल नहीं थी क्योंकि प्राचीन सूत्र भाष्यों में यही रीति है और माघ, किरात, नैषध तक यही अनुस्यूत है। सूत्रों में प्रायः "अथ" अथवा "अथातः" आरम्भ में मिलता है *।

व्याख्याकार लोग इसी को मङ्गलार्थक लगाते हैं और इन्हीं दो तीन अक्षरों पर लम्बा चौड़ा भाष्य बनाते जाते हैं। और ऐसेही वाचस्पतिमिश्र ने भी प्रथम कारिका के "दुःखत्रयाभि-घात" पद को मङ्गलार्थक करने का बलात्कार किया है। पर

कपिल प्रणीता। इयं तु द्वाविंशतिसूत्री तस्या अपि बीजभूता नारायणावतारमहर्षिभगवत्कपिलप्रणीतेति वृद्धाः"।

‡नवम और दशम पृष्ठ की टिप्पणी देखो।

* यो० सू० "अथ योगानुशासनम्" व्या० भा० "अथ शब्दानुशासनम्" वै० द० सू० "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" शा० सू० "अथातो भक्ति जिज्ञासा" व्या० सू० "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" सा० सू० "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषाऽर्थः"

हमारे क्षुद्र अन्तःकरण में तो यही आता है कि उस समय मङ्गल करने की चालही नहीं थी और "अथ" वा "अथातः" से प्रारम्भ करना यह एक उनका "वाक्यालङ्कार" भाषण का प्रकार था। ऐसे भी बहुत ग्रन्थ हैं जिनके आरम्भ में ये शब्द नहीं हैं पर उनके माथे मङ्गल का बोझा धरना केवल बलात्कार, हठ पाण्डित्यप्रदर्शन और चातुर्य है। † तो भी इसी भाष्य के हि-

† जैसे न्यायदर्शन में गौ० सू० "प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्ताऽवयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानात् निःश्रेयसम्" यह प्रथम सूत्र है इसमें मङ्गलाचरण का कुछ नामही नहीं है इस पर वात्स्यायन मुनि क्कत भाष्य है, ये भी प्राचीनही रीति पर चले हैं इन्हों ने मङ्गलाचरण तो नहीं किया पर, इतिश्री में छोड़ के कहीं अपना नाम भी नहीं लिखा और इस प्रथम सूत्र से भी मङ्गलाचरण निकालने का प्रपञ्च नहीं किया। पर विद्यानिवास भट्टाचार्य के पुत्र विश्वनाथ भट्टाचार्य ने न्यायसूत्रवृत्ति में पूर्णतया आधुनिक ही चालें रक्खी हैं उनने आरम्भही में मङ्गलाचरण, गुरुप्रणाम, अपने नाम और पिता के नाम के विधान पूर्वक ६ श्लोकों में भूमिका की है और अन्त में भी निज नामाङ्कित १ श्लोक रक्खा है। ये इस सूत्र की व्याख्या में भी लिखते हैं कि (यद्यपि ऐसा और लोग कहैं कि "सूत्रकार का मङ्गल पर तात्पर्य नहीं है" तो भी हम तो यही कहते हैं कि "प्रमाणं प्राणनिलयः" इस प्रमाण से "प्रमाण" नारायण का नामही हुआ इसलिये ग्रन्थारम्भ में मङ्गल होगया) पर हमें इन्हीं के लेख से यह विदित होता है कि इनके पूर्व अनेक आ-

तीय और अन्तिम श्लोक ❋ से यह विदित होता है कि विज्ञान भिक्षु ने निर्णय करके इसे नारायणाऽवतार कपिल ही का कृत ठहराया है और उन्हीं ने ग्रन्थारम्भही में तत्त्वसमास सूत्रों के साथ इन सूत्रों की पुनरुक्ति होने की भी आशङ्का की है इससे और भी उसी निर्णय को सहायता मिलती है। तब यह पूर्णतया सम्भव है कि अग्निकपिल के सूत्र इन दिनों न मिलते हों और दोनों नारायणकपिलही कृत हों क्योंकि इसमें किसी ग्रन्थ अथवा वाक्य से विरोध नहीं है।

ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं में भी ऐसेही वर्ताव हैं इससे इनकी प्राचीनता पूरी झलकती है।

विज्ञानभिक्षु ने प्रायः अपने पांचोंहीं ग्रन्थों में * कारिकाओं

चार्य इसमें मङ्गल के तात्पर्य का निषेध करते थे। इन विश्वनाथ भट्टाचार्य का लेख यह है "अत्र केचित् सूत्रादौ मङ्गलं न प्रामाणिकमित्यत्र सूत्रकर्तां तात्पर्यं वर्णयन्ति,तदसत् कृतस्याऽप्यऽनिबन्धनसम्भवात् विघ्नाभावनिर्णयेनाऽकरणसम्भवाच्च वयन्तु प्रमाणं प्राणनिलय इति भगवन्नामगणान्तःपातिप्रमाणशब्दस्योच्चारणमेव मङ्गलमितिब्रूमः"।

❋ सा॰ भा॰ श्लो॰ २ "तस्य श्रुतस्य मननार्थमथोपदेष्टुं सद्युक्तिजालमिह साङ्ख्यकृदाविरासीत्। नारायणः कपिलमूर्त्तिरशेषदुःखहानाय जीवनिवहस्य नमोऽस्तु तस्मै" अन्तिम "साङ्ख्यकृत्याः समाघूर्ण्य वेदान्तमथितामृतैः। कपिलर्षिर्ज्ञानयज्ञे ऋषीनाऽऽपाययत् पुरा॥ तद्वचःश्रद्धया तस्मिन् गुरौ च स्थिरभावतः। तत्प्रसादलवेनेदं तच्छास्त्रं विवृतं मया॥"

* इनके बनाये ५ ग्रन्थों का पता लगता है १ ब्रह्मसूत्र-ऋजु

की चर्चा की है इसलिये विज्ञानभिक्षु से ये पूर्व हुवे हैं।

ऐसा सुनने में आबा है कि विज्ञानभिक्षु के भाष्य के व्याख्याकार नागोजी भट्ट ने जयपुर के महाराज जयसिंह जी के यहां से बहु विध पारितोषिक पाया था और रत्नाकर भट्ट के बनाये जयसिंह कल्पद्रुम के देखने से विदित होता है कि उसी राजा के आज्ञानुसार वह ग्रन्थ संवत् १७७० में बना।

तब नागोजी भट्ट का समय भी इसी के लगभग हुआ और इसके पूर्वही विज्ञानभिक्षु हो चुके थे।

रामेश्वर भट्ट के पुत्र नारायण भट्ट ने प्रयोगरत्न में लिखा है कि "मैंने विश्वनाथ दीक्षित के पुत्र अनन्त दीक्षित की सहायता से यह लिखा है" पर ऐसा पता लगता है कि विज्ञानभिक्षु के शिष्य भावागणेश दीक्षित थे और इनके पिता भावा विश्वनाथ दीक्षित थे। यदि सचमुच ये वही विश्वनाथ दीक्षित हों तो भावागणेश दीक्षित और अनन्त दीक्षित दोनों भाई हुवे। पर पूर्वोक्त नारायण के भतीजे रघुनाथ भट्ट ने कालतत्व विवेचन नामक ग्रन्थ में १६७७ का संवत् सूचित किया है पर इनके चाचा के सहायक के भाई के गुरु विज्ञानभिक्षु थे इसलिये साठ सत्तर वर्ष और पूर्व हुवे होंगे।

व्याख्या अर्थात् विज्ञानामृत,२ साङ्ख्य-प्रवचनभाष्य, ३ योगवार्त्तिक, ४ योगसारसंग्रह वा ज्ञानप्रदीप, ५ साङ्ख्यसार। इसमें साङ्ख्य भाष्य और योगवार्त्तिक में परस्पर एक में दूसरे की चर्चा है इसलिये विदित होता है कि दोनों साथही बने हैं पर साङ्ख्यसार में इन दोनों ग्रन्थों की चर्चा है इसलिये वह इनके भी पीछे बना है।

पर ईश्वरकृष्ण विज्ञानभिक्षु से कितने पूर्व हुए इसका ठीक ठीक कहना फिर कठिन है पर फ़िट्स एडवर्डहल् साहब के निर्णयानुसार सं० १४०० के लगभग सर्वदर्शनसंग्रह बना है उसमें भी इनकी कारिकाओं के उद्धृत होने से यह ग्रन्थ उससे भी प्राचीन विदित होता है।

कोलेब्रूक साहब लिखते हैं कि "साङ्ख्यसूत्र भी ईश्वरकृष्ण ही के बनाये हैं कपिल के नहीं" * उनका यह लेख देख के हमको हास्य होता है पर जान पड़ता है कि **कविराज यति** ने **साङ्ख्यतत्वप्रदीप** में ईश्वरकृष्ण के लिये **साङ्ख्य मूलकार** यह पद दिया है,यही इनने भी कहीं सुन पाया हो उसीपर अपना पाण्डित्यप्रदर्शन किया हो॥

ईश्वरकृष्ण ने **साङ्ख्यतत्वकारिका** बनाई इस ग्रन्थ में केवल ७२ कारिका हैं सब आर्या (मात्रावृत्ति) के भेद हैं इसके ऊपर श्री **वाचस्पति मिश्र** ने टीका की है। इसी का नाम **कौमुदी** है इनने भामती, न्यायवार्त्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि, योग भाष्यविवृति प्रभृति अनेक ग्रन्थ बनाये हैं।

यद्यपि हम किसी प्रकार उनका ठीक२ वृत्तान्त नहीं कह सकते तो भी इतना मात्र अवश्य कह सकते हैं कि ये महाशय मिथिला में हुए थे और **मथुरानाथ, जगदीश, गदाधर भट्टाचार्य** प्रमुख महाशयों के तर्कताण्डव की मूल भूत तत्वचि

* उनका लेख यह है "The text of the Sankhya Philosophy, from which the sect of Budha seems to have borrowed its doctrines, is not the work of Kapila himself, though vulgarly ascribed to him; but purports to be composed by Iswara Krishna."

न्तामणि के बनानेवाले गङ्गेशोपाध्याय * के पूर्व और कवित्व दार्शनिकत्वादि के अवधिभूत नैषध और खण्डनखण्डखाद्य प्रभृति ग्रन्थों के रचयिता श्रीयुत श्रीहर्ष † महाशय के पीछे

* वैशेषिक सूत्रों पर भाष्यकार शङ्कर मिश्र, महामान्य पक्षधर मिश्र तथा विद्वद्वर गङ्गेशोपाध्याय परमगहन नैयायिक थे और सब मिथिलाही में हुए हैं। इनमें पिछले दोनों महाशयों के लिये निज कृत सामवत में मिथिला वर्णन में दो श्लोक हैं यथा "विपक्षपक्षक्षयसक्षमोऽत्र विचक्षणः पक्षधरो बभूव। छात्रैर्यदीयैरनवद्यविद्यैर्विद्योतिता भूरखिला विभाति॥ नैयायिकसर्वस्वं चिन्तामणिसञ्ज्ञकं ग्रन्थम्। यो रचयामास सुधीर्गङ्गेशः सोऽत्र सञ्जातः॥"

† श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मल्लदेवी था ऐसी जनश्रुति है कि इनके मामा कश्मीर के प्रदेश के निवासी थे। इनने नैषध काव्य के १६ वें सर्ग के अन्त में लिखा है कि "श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मा मल्लदेवी च यम्। काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिर्महाकाव्ये तद्भुवि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत् षोडशः॥" इस श्लोक से भी इनका काश्मीर का सम्बन्ध विदित होता है। उस समय कान्यकुब्ज के राजा के यहां सभा में आसन पाना और पान के दो बीड़े पाना परम पाण्डित्य और बुद्धिमत्ता का फल था। सो श्रीहर्ष जी ने अपने परम रम्य नैषध काव्य के अन्तिम श्लोक से कान्यकुब्जेश्वर के यहां निज सम्मान होना भी सूचित किया है यथा "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् यः साक्षात् कुरुते

हुए थे। क्योंकि गङ्गेशोपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में वाचस्पतिमिश्र के दो वचनों का अविरोध दिखलाया है और वाचस्पतिमिश्र ने स्वयं **खण्डनोद्धार** नामक ग्रन्थ बनाया है जिसमें खण्डन खण्ड खाद्य में श्रीहर्ष के दिखलाये हुए न्याय दूषणों का खण्डन है।

तत्वकौमुदी व्याख्या के देखने से विदित होता कि इनके गुरु **मार्तण्डतिलक स्वामी** थे।

हमको साङ्ख्यकारिका के इतने अनुवादों का पता लगता कि लेटिन भाषा में प्रोफेसर लेसन्, जर्मनी में विण्डिसमन्, अँगरेजी में कोलेब्रूक, और फ्रांच में पाथीयर तथा सेन्टहिलेयर साहब ने उल्था किया है।

साङ्ख्यकारिका पर हमको जितने ग्रन्थों का पता लगता है उनका नाम हम यहां लिखते हैं।

१ **साङ्ख्यकारिका भाष्य**, यह ग्रन्थ **गौड़पाद** कृत है, लोग ऐसा मानते हैं कि **शङ्कराचार्य** के शिष्य **गोविन्द** थे और उन्हीं के सहवर्ती **गौड़पाद** थे *

स्माधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम्। यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय: श्रीश्रीहर्षकवे: कृति: कृतिमुदे तस्याऽभ्युदीयादियम्॥"

* कोलेब्रूक ने लिखा है कि ईसवी अष्टम शतक के अन्त अथवा नवम शतक के प्रारम्भ में शङ्कराचार्य हुए पर डाक्टर विण्डिसमन लिखते हैं कि ७५० के पूर्वही हो चुके थे।

ऐसा भी प्राय: मिलता है कि गौड़पाद व्यास के पुत्र शुक के शिष्य थे। **गङ्गाधर सरस्वती** ने **दत्तात्रेय चरित्र** में शिव से

२ साङ्ख्य तत्व कौमुदी वाचस्पति मिश्र कृत ।

३ तत्व कौमुदी व्याख्या. बोधारण्ययति के शिष्य भारती यति की बनाई ।

४ तत्वार्णव अर्थात् तत्वामृतप्रकाश, राघवानन्द सरस्वती कृत इनके गुरु अद्वयानन्द और उनके भी गुरु विश्वेश्वर थे ।

५ तत्वचन्द्र, नारायण तीर्थ कृत । इन ने वासुदेव तीर्थ और रामगोविन्द तीर्थ के पास पढ़ा था ।

६ कौमुदीप्रभा, वाहिनीश के पुत्र स्वप्नेश्वर की बनाई ।

७ साङ्ख्यतत्वविलास, रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य का बनाया * ।

८ साङ्ख्यतत्वविभाकर ‡

निज नाम पर्य्यन्त शिष्य परम्परा लिखी है सो यों है ।

(शिव, विष्णु, ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौड़पादाचार्य, गोविन्दाचार्य, शङ्कराचार्य, विश्वरूप, बोधगिरि, ज्ञानगिरि, सिंहगिरि, ईश्वर तीर्थ, नृसिंह तीर्थ, विद्या तीर्थ, शिव तीर्थ, भारती तीर्थ, विद्यारण्य, श्रीपाद, विद्या तीर्थ, मलयानन्द, देव तीर्थ, वृन्द सरस्वती, यादवेन्द्र सरस्वती, कृष्ण सरस्वती, नृसिंह सरस्वती, गङ्गाधर सरस्वती)

* इनकी पितृपैतामहिक परम्परा इतनी दूर तक मिलती है (रघुनाथतर्कवागीश, शिवराम चक्रवर्त्ती, चन्द्रचन्द्र, काशीनाथ, सर्वानन्द मिश्र)

‡ डाक्टर वेबर और तदनुसार फिज्ज एडवर्ड हल् साहब भी ऐसा लिखते हैं कि कदाचित् इस ग्रन्थ के कर्त्ता का नाम

९ साङ्ख्यचन्द्रिका, नारायण तीर्थ कृत।

१० साङ्ख्यकौमुदी, रामकृष्ण भट्टाचार्य कृत †।

यद्यपि बीच में थोड़ा सा ऐसा अन्धकारमय समय बीत गया है कि यदि हम किसी का जीवनचरित्र, समय निर्णय अथवा कुलपरम्परा ढूंढ़ने लगते हैं तो कुछ आधारही नहीं मिलता है जिसके द्वारा कुछ तो जानें किन्तु और भी व्यामोह समुद्र में गड़गापही हो जाते हैं। तो भी जहां तक मुझे पता लगा मैंने बड़े श्रम से लिखा है इतने पर भी जो कहीं कुछ भूल रह गई हो उसे विद्वान् लोग अनुग्रह करके सुधार लें।

अब ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं का अर्थ बहुत संक्षेप में सरल हिन्दी भाषा में लिखता हूं आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी देता जाता हूं, दर्शन रसिकजन! एक बेर इसे आद्यन्त बांच जाइये और ईश्वरकृष्ण का अभिप्राय समझ लीजिये॥

एक दर्शनोत्साही

अम्बिकादत्त व्यास।

वंशीधर हो।

तत्वकौमुदी व्याख्या से ले यहां तक के सब ग्रन्थ साङ्ख्य तत्वकौमुदीही के विवरण हैं॥

† इन दोनों ग्रन्थों में फिर ईश्वरकृष्ण की कारिकाओंहीं का विवरण है।

अथ साङ्ख्यतरङ्गिणी ।

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदवघातके हेतौ ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥ १ ॥

औंगणेशायनमः । आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीनों दुःख अत्यन्त असह्य हैं इस हेतु उनके विनाश का कारण क्या है यह जानने की इच्छा सभी को होती है । यदि कोई कहे कि बाह्यही उपाय विषय औषधि मन्त्र यन्त्रादि बहुत हैं जिनसे उन तीनों दुःखों का नाश हो सक्ता है, तो नहीं उनका ऐसा नाश किसी प्रकार नहीं होता कि उस समय कोई दुःख न रहे और पुनः उत्पन्न न हो किन्तु प्रति दिन जैसे भूख लगती है और मिटती है तैसेही उनकी भी उत्पत्ति परम्परा नहीं छूटती है १ ॥

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः ।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २ ॥

अब यदि कोई कहै कि लौकिक उपाय नहीं है तो क्या हुआ वैदिक अर्थात् कर्मकाण्डही से सहज में तीनों दुःखों का नाश हो सकता है क्योंकि अनेक श्रुतियां सूचन करती हैं कि यज्ञ करने से मुक्ति होती है तब अनेकजन्मसाधनीय इस दुष्कर ज्ञान के लिये कौन प्रयत्न करेगा । तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि यज्ञादि में पापजनक थोड़ी से थोड़ी हिंसा रहतीही है यदि उसका प्रायश्चित्त न किया जाय तो उसका दुःखरूप फल अवश्य भोगना पड़ता है और यज्ञ से जो स्वर्गादि सुख मिलता है उसका अवश्यही विनाश होता है (क्षीणेपुन्येमर्त्यलोकेपतन्ति) और स्वर्ग में भी किसी की सम्पत्ति थोड़ी और किसी

की अधिक रहती है इस कारण परस्पर ईर्ष्या बनी रहती है इस कारण यज्ञादि से दु:खों का समूलघात नाश नहीं होता यह सिद्ध हुआ और जो अनन्त सुख सूचक श्रुति हैं उनका भी दीर्घ काल के सुखही में तात्पर्य है । इसलिये लौकिक कर्म-काण्ड दोनों उपायों से भिन्न उपायही ठीक है क्योंकि यह व्यक्त अव्यक्त और पुरुष इन तीनों के ज्ञान स्वरूप हैं * २ ।

अब इसी ज्ञान के उपयोग के लिये पुरुष और प्रकृति के जाल का वर्णन करते हैं ।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोड़शकस्तुविकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥३॥

संसार में चार प्रकार के पदार्थ हो सकते हैं अर्थात् एक केवल कारण, दूसरा केवल कार्य, तीसरा कार्य कारण दोनों

* यदि कोई कहे कि "हिंसा के निषेध करनेवाली श्रुति (मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि) को यज्ञ में हिंसा के विधान करनेवाली श्रुति (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) बाध लेगी तब दोनों मिल के यही अर्थ होगा कि यज्ञ छोड़ के कभी हिंसा न करे । तब यही सिद्ध हुआ कि यज्ञ की हिंसा की चिन्ता नहीं" तो यह सर्वथा असङ्गत है क्योंकि यदि पहली श्रुति कहती कि "हिंसा में पाप होता है" और दूसरी कहती कि "यज्ञ वाली हिंसा से पाप नहीं होता" तो निस्सन्देह परस्पर विरोध के कारण दूसरी श्रुति पहली श्रुति को बाध लेती पर वहां तो पहली श्रुति कहती है कि हिंसा से पाप होता है और दूसरी कहती है यज्ञ में हिंसा करनी तब तो एक विषयही नहीं है विरोध क्या होगा और एक का दूसरी से बाध क्या होगा ?

और चौथा न कार्य, न कारण, तहां इस मत में प्रकृति केवल कारण है अर्थात् स्वयं किसी से उत्पन्न नहीं है परन्तु बहुतों को उत्पन्न करनेवाली है और महदादिक सात (महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र) कारण भी हैं और कार्य भी हैं। मनःप्रभृति सोलह (मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चभूत) केवल कार्य हैं अर्थात् स्वयं उत्पन्न होते हैं पर स्वयं किसी दूसरे तत्व को उत्पन्न नहीं करते और त्योंहीं पुरुष न किसी के कारण हैं न कार्य हैं इसका स्पष्ट विवरण बाईसवीं कारिका में है ३ ॥

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्व्वप्रमाणसिद्धत्वात् ।

त्रिविधम्प्रमाणमिष्टम्प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि ॥ ४ ॥

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द यही तीन प्रमाण हैं, क्योंकि और मतों में जो उपमानादि प्रमाण माने गये हैं उनका भी इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है।

इस मत में इन्हीं तीन प्रमाणों से सब पदार्थ सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

किन्तु यही फलितार्थ होगा कि हिंसा दोषजनक भी है और यज्ञाङ्ग भी है ॥

फिर भी यदि कोई कहे कि "यान्तिमद्याजिनोऽपिमाम्" इस गीतावाक्य से तो यज्ञ भी विहतही है। तो नहीं, यहां यज् धातु का अर्थ पूजा है (शाण्डिल्य सूत्र अध्याय २ आह्निक २ सूत्र ६६ "तद्यजिः पूजायामितरेषां नैवम्") इसपर के भाष्य में सब स्पष्ट लिखा है और इसी लिये महाभारत में मोक्ष धर्म में हिंसायुक्त धर्म की निन्दा में भी लिखा है (शां० अ० २६५ श्लो० ६४७० "सर्वकर्मस्वऽहिंसां हि धर्मात्मा मनुरऽब्रवीत्। कामरागाद्धि हिंसन्ति वहिर्वेद्याम्पशून्नराः ॥ विष्णुं ये चाऽभिजानन्ति धर्मादेव यजन्तिति। पायसैः सुमनोभिश्च तथाऽपि यजनं स्मृतम्०)

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम् ।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनन्तु ॥ ५ ॥

विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध होने पर जो एक विषयाकार ज्ञान होता है उसी का नाम प्रत्यक्ष है जैसे कमल को देखा तो यों नेत्रेन्द्रिय और कमल के साक्षात् सम्बन्ध होने से "कमल" ऐसा ज्ञान होता है बस यही कमल का प्रत्यक्ष हुवा *। पर चाहिये कि यह ज्ञान संशय † और भ्रम ‡ से

* जब किसी को कमल का ज्ञान हुआ तब यदि उससे पूछें कि तुम्हें क्या ज्ञान हुआ, तब वह कितना भी प्रयत्न करे कि मैं कमल का नाम विना लिये इन्हें ज्ञान का आकार बतलाऊं पर यह उसका किया कभी नहीं हो सक्ता अर्थात् उस पदार्थ ने उस ज्ञान को बांध लिया है, अतएव वह "विषय" कहलाते हैं क्योंकि ("षिञ् बन्धने") "सि" धातु का अर्थ बांधना है ।

† जो एक आधार में दो कोटि का अवलम्बन करके वैकल्पिक ज्ञान हो उसे संशय कहते हैं । संशय स्थूल रीति से तीन प्रकार के होते हैं एक वह जिसमें दोनों कोटियां आधार से सम्बद्ध हों, दूसरा वह जिसमें एक कोटि आधार से सम्बद्ध हो । तीसरा वह जिसमें एक कोटि भी आधार से सम्बन्ध न रखती हो। क्रम से तीनों के उदाहरण में जैसे जल में संशय हुवा "जल है कि कोई द्रव है" "जल है कि स्थल है" और "स्थल है कि शून्य है" बस ।

‡ जो और में औरही का ज्ञान होता है वह भ्रम कहलाता है जैसे सीप का टुकड़ा चांदी नहीं है पर उसे देखतेही

भिन्न हो ॥

किसी को यह बोध हुआ कि यह चांदी है । यदि यही बोध जान बूझ के हो तो "आहार्य" कहलाता है, जैसे नाटक में लड़कों को जानते हैं कि वास्तविक में न कोई लक्ष्मण है न मेघनाद पर अभिनय देखने के समय ठीक २ यही बोध होता है कि लक्ष्मण आये और मेघनाद गये ।

भ्रम का तो वास्तविक पदार्थ के निर्णय होने से नाश हो जाता है, जैसे यह ज्ञान होता है कि यह सीप का टुकड़ा है तो झट चांदी का भ्रम मिट जाता है पर आहार्य में यह विशेष है कि भलेही सहस्र बार कोई क्यों न निश्चय करा दे कि ये लड़के हैं लक्ष्मण मेघनाद नहीं, पर इससे उस आहार्य ज्ञान का कुछ नहीं बिगड़ता । अब किस ज्ञान का कौन प्रतिबन्धक है और किस ज्ञान का कौन जनक है और किस रूप से उनका प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव है तथा किस रूप से उनका कार्य कारणभाव है केवल इतने में न्यायशास्त्र के बड़े २ पोथे भरे हैं अँगरेज लोग वस्तुत: बड़े खोजी हैं पर इस ज्ञानपरम्परा की आभ्यन्तरदृष्टि का अभी उन्हें भी पता नहीं लगा, हमारे आचार्यों ने इस अध्यात्मशास्त्र के समुद्र का कैसा अवगाहन किया है यह बड़े २ ग्रन्थों के देखने से प्रगट होता है । इन्हीं विषयों के गहन ग्रन्थ पढ़ने और पढ़ाने के समय लोहे के चने से चबाने पड़ते हैं और समझने के समय मस्तिष्क काँप उठता है । लोग उपहास करते हैं कि हमारे पण्डित लोग बाह्य व्यवहार से अपरिचित होते हैं । पर सोचना चाहिये कि जो अध्यात्मविषय में ऐसे डूब जाते हैं कि स्वप्न में भी उन्हें प्रतिबध्य प्रतिबन्धकभाव

किसी पदार्थ के साथ किसी दूसरे पदार्थ के नियत साहचर्य के ज्ञान रहने पर कहीं एक पदार्थ को देखनेहीं पर जो वहां हीं दूसरे पदार्थ के रहने का भी ज्ञान होता है इसे अनुमान कहते हैं, जैसे कोई पुरुष रसोई के घर में प्रति दिन देखता था कि धूम उठता है और जब उसने धूम उठता देखा तभी उसने भीतर जाकर अग्नि भी देखा और जब वहाँ अग्नि उसे नहीं मिलता तब धूम भी नहीं देख पड़ता । बस यही देखते २ उसके चित्त में यह दृढ़ होगया कि जहां धूम रहता है वहां हीं अग्नि भी रहता है और जहां अग्नि नहीं वहां धूम भी नहीं फिर दैव संयोग वही पुरुष एक दिन किसी पर्वत की तरहटी में होकर जाता२ उस पर्वत के शिखर पर क्या देखता है कि बहुत से सूखे झाड़ों के झमाट से बड़ा घटाटोप धूम निकल रहा है। साथही उसे स्मरण हुवा कि जहां धूम रहता है वहां अग्नि अवश्यही रहता है और फिर ज्ञान हुवा कि मैं प्रत्यक्ष देखता हूं कि इसमें धूम है । तब निश्चय हुआ कि इस लिये इसमें अवश्यही अग्नि है बस यही अनुमान हुवा ॥

यहां वर्तमान अनुमान में अग्नि "साध्य" है, धूम उसका साधक "हेतु" है । जिसमें हेतु द्वारा साध्य की सिद्धि करनी है वह पर्वत "पक्ष" है। जहां पहले हेतु और साध्य का साहचय देखा था वह पाकशाला "सपक्ष" है। जहां साध्य न रहने से

की अवच्छेदकताही सूझती हैं उन्हें यदि वाह्य विचार से औदास्य भी हुआ तो चिन्ता नहीं । पर यह हम उन गहन पण्डितों के विषय में लिखते हैं कुछ ग्रन्थमुखचुम्बक नवयुवकों के विषय में नहीं ॥

हेतु के भी न रहने का निर्णय है वही "व्याप्ति" है। साध्य की व्याप्ति वाले हेतु के पक्ष में रहने का ज्ञानही "परामर्श" है। यों अनुमान के उपयोगी संज्ञा शब्दों को भी संक्षेप में कह सुनाया है पर यदि विस्तार करना चाहैं तब तो न्यायशास्त्र में एक २ के निरूपण के लिये बड़ा २ पोथा बना है॥

स्थूल रूप से अनुमान दो प्रकार का है "वीत" और "अवीत" वीत अनुमान उसे कहते हैं जिसमें पहले कहीं सपक्ष में हेतु और साध्य का साहचर्य देख के और फिर पक्ष में हेतु को देख के उसी उदाहरण के बल से साध्य का अनुमान हो जैसे पहलेवाला अनुमान।

अवीत अनुमान उसे कहते हैं जिसमें यावत उदाहरणों में साध्य के न रहने से हेतु का न रहनाही निर्धारित हो और फिर केवल पक्ष में हेतु का रहना जानने से उन उलटे उदाहरणों के बल से पक्ष में साध्य का अनुमान हो। जैसे पृथ्वी में गन्ध देखने से अनुमान होता है कि यह जलादि पदार्थों से भिन्न है क्योंकि जलादि पदार्थ (जो निज से भिन्न नहीं हैं) में गन्ध नहीं है। इसी को "शेषवत्" कहते हैं क्योंकि "जो जलादि पदार्थों से भिन्न नहीं हैं उनमें गन्ध नहीं है" इतनेही से यह शेष रह गया कि जहां गन्ध है वह इनसे भिन्न है और यह शेषही इस अनुमान ज्ञान का विषय है॥

वीत अनुमान दो प्रकार का है "पूर्ववत्" और "सामान्यतो दृष्ट" जहां हेतु साध्य के साहचर्य ज्ञान रहने पर उन्हीं के सजातीय हेतु साध्य अनुमान के विषय होते हैं उसका नाम "पूर्ववत्" जैसे पहले वाला पर्वत में धूम से अग्नि का अनुमान।

जहां उदाहरण वाले हेतु साध्य के विजातीय हेतु साध्य अनुमान के विषय होते हैं वह "सामान्यतो दृष्ट" कहलाता है जैसे अग्नि रहते दाह होता देख जाना कि कारण रहते कार्य अवश्य होता है। फिर आंधी चलती समझ अनुमान किया कि पेड़ कांपते होंगे इत्यादि ॥

इन तीन अनुमान भेद की व्याख्या "अथतत्पूर्वकं त्रिविध अनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टं च" इस गौतमसूत्र पर और ही चाल से है और अन्य ग्रन्थों में अनुमान के साधारण, असाधारण, अनुपसंहारी, ये भेद किये हैं पर सब का फलित एक ही है ॥

यों प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाणों का निरूपण हुवा अब तीसरा प्रमाण आप्तवचन है यह प्रमाण यद्यपि सब के पीछे कहा है तथापि यह अपनी कक्षा में इतने पदार्थों को रखता है जितने न प्रत्यक्ष और न अनुमान के विषय हो सकते हैं। शिक्षा उपदेशादि इसी से उज्जीवित हैं और सैनिक राजकीय तथा सामाजिक प्रबन्ध इसी के आधीन हैं। यदि यह प्रमाण न होता तो पुराणेतिहासादि उड़े २ फिरते और जो जिसकी आंख के सम्मुख है अथवा जो अनुमानगोचर है इससे अधिक कोई कुछ न जानता ॥

प्रमाणिक पुरुष का कहा हुवा अथवा दोषरहित वाक्य आप्तवचन कहलाता है ॥

वाक्य खण्ड खण्ड करके बहुत देर देर में कहना, असम्बद्ध बक उठना (जैसे किसी ने "मेरा व्याह है इसलिये घर जाऊंगा" इस अभिप्राय से कहा कि "मैं व्याह घर जाना") अस-

भव बकाना (जैसे "करील के पत्ते पर मक्खी ने ऊंट जना") ये सब वाक्यदोष कहलाते हैं इनके न होने से वाक्य प्रमाण होता है ॥

पदों के समूह को वाक्य कहते हैं और वाक्य समूह को (यदि परस्पर सम्बद्ध हों तो) महा वाक्य कहते हैं ॥

बिना किसी के प्रत्यक्ष कोई अनुमान नहीं होता और इन दोनों के बल बिना मुग्ध बालक को शब्दों के अर्थ का ज्ञान नहीं होता इसलिये पहले प्रत्यक्ष फिर अनुमान तब शब्द का निरूपण किया ॥

प्रमाणों की सङ्ख्या भिन्न २ मताऽवलम्बियों ने भिन्न २ मानी है जैसे। चार्वाक १ प्रत्यक्ष । काणाद १ प्रत्य० २ अनुमान। एक प्रकार के नैयायिक १ प्र० २ अनु० ३ उपमान । नैयायिक १ प्र० २ अनु० ३ उप० ४ शब्द। प्राभाकर १ प्र० २ अनु० ३ उप० ४ श० ५ । अर्थापत्ति । भाट्ट तथा वेदान्ती १ प्र०२ अनु०३ उप०४ श०५ अर्था०६ अनुपलब्धि०। पौराणिक १ प्र० २ अनु० ३ उप०४ श० ५ अर्था० ६ अनुप०७ सम्भव० ८ ऐतिह्य। तान्त्रिक इन सभों को तथा चेष्टा को भी यों ९ प्रमाण मानते हैं ॥

इन सभों के लक्ष्य लक्षण तथा खण्डन मण्डन करने में बहुतही बढ़ जायगा इसलिये यहांहीं विश्राम करते हैं ॥ ५ ॥

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरऽनुमानात्।
तस्मादऽपि चाऽसिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्॥ ६ ॥

जिन प्रकृत्यादि पदार्थों में इन्द्रिय की गति नहीं उनकी सिद्धि (सामान्यतोदृष्ट नामक) अनुमान से होती है । और

जहां प्रत्यक्ष अनुमान दोनों की गति नहीं है उसकी सिद्धि शब्द प्रमाण से होती है ॥ ६ ॥

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादऽभिभवात् समानाभिहाराच्च च ॥७॥

यदि कोई कहै कि "यदि प्रत्यक्षही नहीं होता तो प्रकृत्यादि नहीं हैं ऐसाही क्यों नहीं मान लेते ?" तो नहीं, प्रतिबन्धक होने से वर्तमान पदार्थ का भी प्रत्यक्ष नहीं होता। जैसे अतिदूरता से तारों का। अति सामीप्य से नेत्र के अञ्जन का। इन्द्रियों के नाश होने से अन्धादि को रूपादि का। मन के दूसरी ओर हो जाने से जिधर मन नहीं है उस पदार्थ का। सूक्ष्मता होने से परमाणु का। आड़ होने से पर्वतादि के परले पदार्थों का। इन्द्रिय के विक्षोभ हो जाने से घुघ्घू को सूर्य का एक रंग में मिल जाने से तलाव में गिरे हुवे जलविन्दु का ७ ॥

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाऽभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः ।
महदादि तच्च च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च ॥ ८ ॥

जब प्रकृति कार्यरूप से परिणत होती है तब उसका प्रत्यक्ष होता है इसलिये पूर्व में भी अवश्यही प्रकृति रहती है इसमें कोई संशय नहीं, पर पूर्व में प्रत्यक्ष का प्रतिबन्धक सूक्ष्मत्व * है इसीलिये प्रकृति का विना कार्यरूप हुवे साक्षात्कार नहीं होता। प्रकृति के कार्य महत्तत्वादिक प्रकृति के सदृश भी हैं और विलक्षण भी हैं ॥ ८ ॥

यदि कोई कहै कि "जो पूर्व में नहीं रहता उसी की उत्पत्ति होती है इसलिये क्यों व्यर्थ कल्पना करते हो कि यदि कार्यरूप से प्रकृति पाई जाती है तो पूर्व भी अवश्यही थी ?"

* इस मत में अणु और सर्व व्यापक दोनों सूक्ष्म कहलाते हैं।

तो यह सर्वथा भूल है ॥

उत्पत्ति के पूर्व भी किसी न किसी आकार में कारण र हताही है जैसे कुण्डल अपनी उत्पत्ति के पूर्व सुवर्णपिण्ड के आकार में । क्योंकि जो वर्त्तमान है उसी की उत्पत्ति होती है जैसे तिल में से तेल की । और जो है ई नहीं उसकी क्या उत्पत्ति होगी जैसे बालू में से तेल नहीं निकलता । (इस मत में उत्पत्ति का अर्थ प्रादुर्भाव और नाश का अर्थ तिरोभाव है)।

दूसरे, सबसे सभी तो होता नहीं जिस्से जिसका नियत सम्बन्ध है उसी से उसकी उत्पत्ति है जैसे ऊख से रस का और तिल से तेल का, तो यदि उत्पत्ति के पहले रस अथवा तेल था ही नहीं तो ऊख और तिल के साथ सम्बन्ध किसका था?। और यदि बिना सम्बन्ध योंहीं निकल पड़ा तो उलट पुलट तिल से रस और ऊख से तेल ही क्यों न निकला? इसकी व्यवस्था तभी बैठेगी जब कार्य और कारण का सम्बन्ध हो और सम्बन्ध तभी हो सक्ता है जब कार्य उत्पत्ति के पहिले भी हो । इस लिये सिद्ध हुआ कि उत्पत्ति के पूर्व कार्य तिरोभूत हो के रहता है और पीछे उसी का प्रादुर्भाव होता है ॥

यदि कोई कहे कि "यह कुछ बात नहीं जिसमें जिसके उत्पन्न करने की शक्ति रहती है वह उसी को उत्पन्न करता है दूसरे को नहीं,जैसे ऊख रस को और तिल तेल को, तब कार्य-कारण के सम्बन्ध मानने की क्या आवश्यकता है?" तो यह पूरा भ्रम है । फिर हम यही कहेंगे कि उस शक्ति से अन्धाधुन्ध चाहे सो हो उत्पन्न हो जाता है कि कोई ऐसा पदार्थ जिस्से कुछ सम्बन्ध हो ? यदि अन्धाधुन्ध, तो कभी ऊख की शक्ति से तेल भी उत्पन्न होना चाहिये । और यदि सम्बन्ध है तो आई हमारीही वाली बात ॥

असदऽकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्य्यम्॥ ९॥

फिर, हमारे मत में कार्य और कारण का अभेद है। क्योंकि जो परस्पर भिन्न रहते हैं उनका कि तो परस्पर संयोग रहता है जैसे जल और कमल का, और कि एक दूसरे से दूर रहता है जैसे हिमाचल और विन्ध्याचल। पर कुण्डल और सोने का तो न परस्पर संयोगही है और न दोनों दूरही दूर रहते हैं इसलिये दोनों का अभेद सिद्ध हुआ। फिर यदि कार्य की उत्पत्ति के पूर्व कारण था और कारण कार्य से भिन्न नहीं है तो उस समय कार्य न था यह कहना व्यर्थ है।

यों सब प्रकार से यही सिद्धान्त हुआ कि उत्पत्ति के पूर्व भी कार्य किसी अवस्था में रहताही है॥ ९॥

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ १०॥

महत्तत्व से पञ्चभूत तक सब व्यक्त कहलाते हैं और केवल प्रकृति को अव्यक्त कहते हैं। व्यक्त और अव्यक्त में इतना भेद है कि व्यक्त सब हेतुमान् हैं अर्थात् सभी का कोई न कोई हेतु है, और अनित्य हैं,और सबके कोई व्यापक नहीं हैं,और कुछर क्रिया सभी में है, अनेक हैं, कारण के आश्रित हैं, प्रकृति के सूचक हैं, सावयव हैं, और प्रकृति के परवश हैं पर अव्यक्त इनसे विपरीत हैं॥ १०॥

त्रिगुणमऽविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ ११॥

अब व्यक्त और अव्यक्त इन दोनों में सदृशता कितनी है

और पुरुष से विलक्षणता क्या है सो दिखलाते हैं। व्यक्त अव्यक्त दोनोंही त्रिगुणमय हैं, प्रकृति से अभिन्न हैं, ज्ञान के विषय हैं, अनेक पुरुषों के उपयोगी हैं, कुछ उत्पन्न करते रहना इस स्वभाव वाले हैं। परन्तु पुरुष इन सब बातों से निराला, साक्षी, चेतन विलक्षणही है ॥ ११ ॥

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥ १२ ॥

सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों गुण क्रम से सुख दुःख और मोह स्वरूप हैं। और क्रम से प्रकाश करना, प्रवृत्ति करना और रोकना यही इनका काम है। और तीनों गुणों का यह स्वभाव है कि एक को आक्रमण करके अपना प्रभाव दिखलाना, परस्पर एक दूसरे के आश्रय से रहना, परस्पर दूसरे को उत्पन्न करते रहना, और परस्पर साथ बरतना ॥१२॥

सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्चरजः।
गुरु वरणकमेवतमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ॥ १३ ॥

सत्वगुण हलका है और प्रकाश करनेवाला है, रजोगुण चञ्चल है और प्रवर्त्तक है, त्योंहीं तमोगुण भारी है और आवरण करनेवाला है। जैसे तेल बत्ती और अग्नि इन तीनों के भिन्न २ स्वभाव हैं तो भी मिल जुल के उजाले का एक काम करते हैं वैसेही यद्यपि इन तीनों गुणों के तीन भिन्न २ स्वभाव हैं तो भी मिल के सांसारिक काम में आते हैं ॥ १३ ॥

अविवेक्यादेः सिद्धिस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययेऽभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात्कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम् ॥१४ ॥

संसार सुख दुःख मोहात्मक है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ ऐसे हैं

जिनके साचात्कार करने से किसी को सुख किसी को दुःख और किसी को मोह होता है * इसलिये संसार (अर्थात् व्यक्ताव्यक्त) त्रिगुणात्मक है यह तो सिद्ध होगया पर प्रकृति से भिन्न न होना ज्ञान के विषय होना इत्यादि भी त्रिगुणमय होनेहीं से सिद्ध होगया क्योंकि प्रगट में जो २ त्रिगुणमय है उस

* यदि कोई नैयायिक कुमार जो कहैंगे कि "यदि किसी पदार्थ के अवलोकन से सुख दुःखादि हुवे तो इससे उस पदार्थ में सुख दुःख कहां से सिद्ध हुवे ? इसको तो लाघव से यों कल्पना करनी चाहिये कि सुख दुःख आत्मा में हैं और उन २ पदार्थों का साम्हना होने पर यथावसर आत्माहीं में सुख दुःखादिकों का उत्तेजन होता है ?" तब हमारा इतनाहीं पूछना पर्य्याप्त होगा कि तुमने मधुरगुण मिसरी में कैसे माना वहां भी यही कल्पना क्यों नहीं कर लेते कि आत्मा अथवा जिह्वाही में मधुर कटु आदि गुण हैं और मिसरी नीम आदि उसके उत्तेजक हैं। यदि फिर भी आग्रह से आत्मा को सुखी दुःखी कहेही जायँगे तो फिर भी उत्तर देंगे कि यदि आत्मा में सुखादि नित्य हैं तो यह उसका स्वभाव हुवा तो जैसे जल का शैत्य और वह्नि का दाह स्वभाव कभी नहीं छूट सक्ता वैसेही मुक्ति होने पर भी आत्मा का सुख दुःख कैसे छूटैगा ? (यद्यात्मा मलिनोस्वच्छो विकारीस्यात्स्वभावतः। नहिँ तस्य भवेन् मुक्तिर्जन्मान्तर शतैरपि) (सा० सू० "स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्") स्वभाव छूट सकता है कि नहीं इसका विवेचन अन्यत्र बहुत है यहां लिखने में बहुत विस्तर हो जायगा इसलिये बस ॥

उसमें ये गुण अवश्य हैं और जिसमें ये गुण नहीं हैं वह त्रि-गुणमय भी नहीं है जैसे आत्मा । योंहीं जब हम व्यक्तों को देखते हैं तो साथही अनुमान होता है कि कार्य अपने कारण के गुणमय होता है तो अवश्यही ये व्यक्त पदार्थ भी कोई ऐसा ही कारण रखते हैं जो इनका समान गुण हो तो अव्यक्त भी सिद्ध हुवा ॥ १४ ॥

भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूपस्य ॥ १५ ॥

अब यदि कोई कहै कि अव्यक्तही से व्यक्त की उत्पत्ति मानने की क्या आवश्यकता है ? व्यक्तही से व्यक्त की उत्पत्ति मानने से सब बन जाता है तिसपर कहते हैं !

(इसका सोलहवीं कारिका के प्रथम चरण तक अन्वय है)

घट पट जल भूमि आदि का चरम कारण अव्यक्त अवश्य ही है क्योंकि प्रपञ्च के कार्य कारणहीं से प्रगट और उसी में विलीन भी होते हैं। अर्थात् वे ज्यों २ एक दूसमें से प्रगट होते जाते हैं त्यों २ व्यक्त होते जाते हैं इससे सिद्ध हुवा कि उनको प्रथमतम अव्यक्तावस्था है और यों जब एक का दूसरे (निज कारण) में लय होता है तब वह उसकी अव्यक्ताऽवस्था होती जाती है, योंहीं होते२ चरम अव्यक्ताऽवस्थाही सिद्ध होती है।

और यह भी समझना चाहिये कि कारण की शक्ति से कार्य की उत्पत्ति है यह बात प्रसिद्ध है पर हम कारण में कार्य की अव्यक्तता से अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं मानते प्रत्युत उसी को शक्ति कहते हैं, इस रीति से भी जो सब कार्यों को व्यक्त करने की शक्ति रखता है वह सबका अव्यक्तही सिद्ध होता है।

सब पदार्थ भिन्न २ हो के भी त्रिगुणमयत्वादि एकही गुण के देख पड़ते हैं इससे भी यही सिद्ध होता है कि इन सबों से अतिरिक्त इन सबों का कोई एकही कारण है।

यदि कहो कि फिर हम महत्तत्वही को सबका कारण मानेंगे तो नहीं क्योंकि जो परिमित अर्थात् अव्यापक हैं वे अवश्यही उनके व्यापक कारणवाले होते हैं ॥ १५ ॥

कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्त्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत्प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥ १६ ॥

यों अव्यक्त तो सिद्ध हुवा पर इसकी अवस्था बदलतीही रहती है जैसे कभी तीनों गुणों की साम्यावस्था हुई कभी वैषम्याऽवस्था जब साम्यावस्था होती है तब वह शुद्धप्रकृति का स्वरूप रहता है और जब वैषम्यावस्था होती है तब महत्तत्वादि रूप रहता है । जैसे मधुर लवणादि के तारतम्य होने से जल के भांति २ के परिणाम होते हैं वैसेही सत्वादि गुणों के न्यूनाधिक होने से प्रकृति के भी बहुविध परिणाम होते हैं ॥ १६ ॥

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १७ ॥

यों प्रकृति का निरूपण तो हुवा (इसी के शक्ति, अजा, अविद्या, प्रधान, अव्यक्त, तम, माया, ब्राह्मी आदि अनेक पर्याय हैं *) अब पुरुष का निरूपण करते हैं।

त्रिगुणमय जो हो कोई पदार्थ देख पड़ता है वह किसी पर के अर्थ देख पड़ता है (जैसे अन्न, जल, फूल, सुगन्ध, पलँग)

---

* "ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथाऽपरे। प्रकृतिश्च पराचेति वदन्ति परमर्षयः" इति स्मृतिः ॥

तो देह बुद्धि इन्द्रिय भी त्रिगुणमय होने के कारण अवश्यही किसी पर के लिये हैं, तो वही पर पुरुष सिद्ध हुवा और यदि कहो कि उसे पुरुष कहने की कोई आवश्यकता नहीं है वह कोई प्राकृतही पदार्थ होगा, तब तो वह फिर त्रिगुणमय हुवा और फिर अन्यार्थ हुवा, फलित यह कि जहां तक कोई विलक्षण आत्मा न मानोगे तहां तक अनवस्था दोष न छूटैगा। और जब त्रिगुणत्वादि शून्य आत्मा मान लिया तब तो अनवस्था का गन्ध भी नहीं है। त्रिगुणमय जितने पदार्थ हैं उनका कोई अध्यक्ष अवश्य होता है। सुखदुःखादिमय पदार्थ भोग्य हैं और तब उनसे भिन्न कोई भोक्ता अवश्य है यों भी कई प्रकार से पुरुष की सिद्धि होती है। तिसपर भी अनेकानेक श्रुति जिस पुरुष के अत्यन्त दुःख वियोग अर्थात् मोक्ष के लिये कोलाहल मचा रही हैं उस, सुखदुःखादि से नितान्त अलिप्त पुरुष को मानना हीं पड़ैगा † ॥ १७ ॥

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥ १८॥

जन्म, मरण और इन्द्रियों के अनुभव सब को भिन्न २ होते हैं और एक एकी सबकी एकही प्रवृत्ति नहीं होती तथा सत्वादि गुणानुसार सबों के स्वभाव भिन्न २ हैं इसलिये पुरुष अनेक हैं यह सिद्ध हुवा ॥ १८ ॥

---

† इस कारिका में कापिलषड्ध्यायी के प्रथमाध्याय के ये सूत्र ठीक २ झलकते हैं। "संहतपरार्थत्वात् १४० त्रिगुणादिविपर्ययात् १४१ अधिष्ठानाच्चेति १४२ भोक्तृभावात् १४३ कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च १४४"।

तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥१९॥

और पुरुष में गुणप्रयुक्त कोई दोष नहीं है इसलिये शुद्ध होने के कारण, यह आपही सिद्ध होगया कि पुरुष साक्षी है, केवल है, मध्यस्थ है, द्रष्टा है और अकर्त्ता है क्योंकि ये धर्म त्रिगुणमय पदार्थही में नहीं रह सकते ॥ १९ ॥

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः ॥ २० ॥

अब यह शङ्का हो सकती है कि "जिसे चेतन मान रक्खा है वह पुरुष तो केवल शुद्ध है कुछ कर धर नहीं सकता और जो प्रकृति सब संसार के करने धरने वाली है वह नितान्त जड़ है उसमें कुछ चेतनता का लेश भी नहीं हैं और चेतनता तथा कर्तृता ये दोनो एकही पदार्थ में अनुभवगोचर होती हैं तब वर्त्तमान बात कैसे ?" पर तत्व यह समझना चाहिये कि प्रकृति पुरुष का संयोग ऐसा है कि कभी प्रकृति भी चेतन सी जान पड़ती है और कभी पुरुष भी कर्त्ता सा जान पड़ता है, जैसे चमकीले दर्पण को एक सुवर्णभूषण के अभिमुख धर दें तो दर्पण के प्रकाश से वह प्रकाशवान् सा विदित होता है और उसके प्रतिबिम्ब से वह भूषणाकार सा विदित होता है । इसी लिये "मेरी इच्छा है मैं करता हूं" ये अनुभव भी सङ्गत हुवे ॥२०॥

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥ २१ ॥

प्रकृति को अपना सब नाच कूद पुरुष को दिखाना है और पुरुष को प्रकृतिनिष्ठही सत्वपुरुषान्यताख्याति से कैवल्य पाना

है इसी परस्पर की अपेक्षा से दोनों का संयोग है और अकेले दोनोंहीं सृष्टि करने को असमर्थ हैं पर इस संयोगही से सृष्टि होती है।

जो प्रत्येक से नहीं होता वह भी दो के मिलने से होता है जैसे "एक अन्धा था और एक लँगड़ा दोनों ने सुना कि कुछ दूर एक गांव में रुपए बँट रहे हैं दोनों ने चाहा कि हम भी चलैं पर क्या करैं एक को मार्ग नहीं सूझता था और दूसरा चल नहीं सकता था दैवात् उनको ऐसी बुद्धि उपजी कि अन्धे ने लँगड़े को कन्धे पर बैठा लिया; बस लँगड़े की आंख और अन्धे के पैर. वह बतलाता गया और यह चला गया झट दोनों जा पहुंचे" ॥ २१ ॥

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोड़शकः।
तस्मादपि षोड़शकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥ २२ ॥

अब सृष्टि का क्रम कैसे है सो कहते हैं, प्रकृति से महत्तत्व महत्तत्व से अहङ्कार, अहङ्कार से सोलह पदार्थों का समूह (अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, एक मन और पांच तन्मात्र) इसमें भी पांच तन्मात्रों से पांच महाभूत उत्पन्न होति हैं (अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और शब्द आकाश का गुण है। शब्द और स्पर्श दोनों तन्मात्र से वायु उत्पन्न होता है और शब्द और स्पर्श दोनोंहीं इसके गुण हैं। इन दोनों तन्मात्र सहित रूप तन्मात्र से तेज उत्पन्न होता है और ये तीनों उसके गुण हैं। इन तीनों तन्मात्र सहित रस तन्मात्र से जल उत्पन्न होता है और ये चारों इसके गुण हैं। और इन चारों तन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्र से पृथ्वी उत्पन्न होती है और ये पांचोंहीं उसके गुण हैं ॥ २२ ॥

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम् ।

सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद् विपर्यस्तम् ॥ २३ ॥

सब जीव मात्र को किसी पदार्थ के आलोचन करने के अनन्तर थोड़ा मनन होता है फिर 'मैं' ऐसा बोध होता है उस के अनन्तर 'यह करना' ऐसा निश्चय होता है। इसी निश्चय का नाम अध्यवसाय है औ यही बुद्धि का लक्षण तथा प्रधान धर्म है (धर्म औ धर्मी का अभेद मान के अध्यवसाय ही को बुद्धि कह सक्ते हैं जैसे तरङ्ग को जल, पर स्पष्ट यह है कि जिस में अध्यवसाय हो वह बुद्धि) इस के आठ धर्म हैं धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। तथा अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य औ अनैश्वर्य। इन में पहले चार सात्त्विक हैं औ पिछले तामस ॥ २३ ॥

अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः ।

एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चैव ॥ २४ ॥

'यह मैं हूं' 'यह मेरे लिये है' 'यहां मेरा अधिकार है' ये अभिमान की तरङ्गें जिस में उठा करती हैं उसी का नाम अहङ्कार है। इस से दो प्रकार की सृष्टि होती है, ग्यारह इन्द्रियों की औ पांचतन्मात्रों की ॥ २४ ॥

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात् ।

भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

तीनों गुणों की प्रधानता से अहङ्कार तीन प्रकार का कहलाता है। सात्विक, राजस और तामस। तहां सात्त्विक से ग्यारहों इन्द्रिय, और तामस से पांचो तन्मात्र की उत्पत्ति होती है। और राजस तो दोनों ही की उत्पत्ति में सहायक रहता है॥ २५ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि ।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥ २६ ॥

इन्द्रिय दो प्रकार के हैं 'ज्ञानेन्द्रिय' औ 'कर्मेन्द्रिय' तहां ज्ञानेन्द्रिय पांच हैं चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसन, औ त्वक् (देखना, सुनना सूंघना, सवाद लेना औ ताते ठण्ढे, करे औ कोमल का अनुभव करना क्रम से ये ज्ञानेन्द्रियों से होते हैं) यों हीं कर्मेन्द्रिय भी भी पांच हैं वाक्, पाणि, पाद, पायु, औ उपस्थ (बोलना, धरना उठाना समेटना फैलाना, चलना, उत्सर्ग करना औ रमण करना क्रम से ये पांच काम कर्मेन्द्रियों से होते हैं) ॥ २६ ॥

उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात् ।
गुणपरिणामविशेषात् नानात्वं वाह्यभेदाश्च ॥ २७ ॥

इन्द्रियों से वस्तु का केवल निर्विशेष ज्ञान होता है पीछे 'ऐसा है ऐसा नहीं' इन सङ्कल्प विकल्पों की कल्पना करना ही मन का काम है। इसी सङ्कल्पक इन्द्रिय को मन कहते हैं। जो सात्त्विकाहङ्कार से उत्पन्न हो उसी का नाम इन्द्रिय है इस लिये मन भी इन्द्रिय है। पर मन की सहायता के बिना किसी इन्द्रिय से कोई काम नहीं होता इसलिये मन को ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय दोनों हीं कह सक्ते हैं। गुणों के कम ढेर होने से एक कारण से भी अनेक प्रकार के कार्य होते लोक में बहुत देख पड़ते हैं। इस लिये एक सात्त्विकाऽहङ्कार से अनेक प्रकार के इन्द्रियों का उत्पन्न होना असङ्गत नहीं ॥ २७ ॥

शब्दादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः ।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम् ॥२८॥

शब्दादिक पांच विषयों में जो पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति है उन को आलोचन कहते हैं और पांचो कर्मेन्द्रियों के जो पांच कर्म हैं वे ही पांच भिन्न २ उन की वृत्तियों के नाम हैं (वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग औ आनन्द) ॥ २८ ॥

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥ २९ ॥

मन, बुद्धि और अहङ्कार इन तीनों अन्तःकरणों के जो पहिले लक्षण कहे हैं वेही इन तीनों की वृत्तियों के नाम हैं जैसे मन का मनन बुद्धि का अध्यवसाय और अहङ्कार का अभिमान यह तो इन की प्रधान वृत्तियां हैं पर सामान्य रूप से प्राण, अपान उदान, व्यान और समान ये पांच वायु * भी अन्तःकरण की वृत्ति ही कहलाती हैं क्योंकि अन्तःकरण के रहते ये वृत्तियां अवश्य होती हैं और जब अन्तःकरण नहीं तब ये वृत्तियां भी नहीं रहतीं ॥ २९ ॥

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा ।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः ॥ ३० ॥

बिना अन्तःकरण की वृत्तियों के किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता इसलिये किसी ज्ञानेन्द्रिय से किसी पदार्थ के आलोचन करलेने पर भी अन्तःकरण के व्यापार के होने बिना किसी पदार्थ का पूरा ज्ञान नहीं होता क्यों कि आलोचन मात्र से तो केवल सम्मुग्ध ज्ञान मात्र हो कर रह जाता है, जिस का आकार कुछ

* हृदय में प्राण गुदा में अपान नाभि में समान कण्ठ में उदान और सब शरीर में व्यान यों इन पांचों वायु के तो ये पांचों स्थान हैं पर नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये और भी पांच वायु हैं। डकार लेने और वमन करने के काम में नाग, आंख खोलने आदि के काम में कूर्म, छींकने के काम में कृकर, उबासी अर्थात् जम्हाई के काम में देवदत्त आता है और धनञ्जय वायु शरीर की नस नस और हड्डी हड्डियों में ऐसा व्याप्त रहता है कि मरे शरीर को भी नहीं छोड़ता।

भी नहीं कहा जा सकता है। फलित यह हुआ कि पूरे ज्ञान में एक ज्ञानेन्द्रिय औ तीन अन्तःकरण इन चारों ही की वृत्तियां होती हैं जैसे कोई यात्री किसी लुटेरू को दूर से देखता है तो प्रथम क्षण में तो केवल वस्तु मात्र का गोलमाल ज्ञान होता है पर जब मन लगाता है तब उसी से निश्चय होता है कि यह तो कान तक बाण ताने भयानक बाने से लुटेरू चला आता है फिर 'यह तो मुझ को मारने चाहता है' इस प्रकार का अभिमान करता है और इस के भी पीछे 'अब तो भागना ही चाहिये' ऐसा अध्यवसाय करता है।

इस उदाहरण में तो सब वृत्तियों का क्रम से होना दिखलाया गया है पर कभी २ यह चारों वृत्ति एक ही साथ हो जाती हैं जैसे कोई पुरुष अंधेरी रात में जङ्गल में चला जाता है औ मेघ ऐसे छा रहे हैं कि अपना हाथ तक नहीं सूझ पड़ता है फिर यदि बिजली के चमकते ही उस के क्षणिक प्रकाश से एकाएकी अपने पावों के पास ही एक भयानक सिंह को देखता है तो उसी क्षण चिंहुक के दूर उछल जाता है यहां इसे आलोचन, मनन, अभिमान और अध्यवसाय एक ही साथ हो जाते हैं।

यों चाहे परोक्ष पदार्थ हो अथवा अपरोक्ष पर उस के ज्ञान के लिये किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय का अवश्य ही काम पड़ता है। ३०

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्य्यते करणम्॥ ३१

जैसे कुछ सेना के भट लोग एक ठिकाने अपने २ अस्त्र रख कर टहलते रहें औ यदि एकाएकी युद्ध के नगारे बज उठें तो वे सब झट पट अपने २ खड्ग धनु बरछी भाले आदि उठा लेते हैं क्योंकि उन लोगों का उन्हीं अस्त्रों के साथ संकेत बंधा है वैसे ही बहिरिन्द्रिय भी चाहे एकाएकी सब साथ ही किसी काम में क्यों

न लगें पर इन का भी उन वृत्तियों के साथ ऐसा संकेत बंधा है कि जिसको जो वृत्ति है वह उसी को धारण करता है कभी उलट पलट नहीं होता भोगापवर्ग रूप धर्मादि चक्र पुरुषार्थ कहलाता है औ वही सब को अपने २ काम में प्रवृत्त करता है ॥ ३१ ॥

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् ।
कार्य्यञ्च तस्य दशधा हार्य्यं धार्य्यं प्रकाश्यं च ॥ ३२ ॥

पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय मन अहंकार और बुद्धि ये तेरहों करण कहलाते हैं आहरण, धारण, औ प्रकाश यही तीन इनकी क्रिया हैं अर्थात् कर्मेन्द्रिय तो केवल अपने२ विषयों का आहरण करते हैं बुद्धि, अहंकार, औ मन अपनी प्राणादि वृत्तियों से धारण करते हैं और ज्ञानेन्द्रिय आलोचन से बाह्य पदार्थों का प्रकाश करते हैं।

इन क्रियाओं से साधनीय कार्य्य भी दस दस प्रकार के हैं, अर्थात् कर्मेन्द्रियों के पांचों वचनादिक कार्य्य दिव्य * और अदिव्य भेद से दस प्रकार के हुए पर ये सब हार्य्य कहलाते हैं औ अन्तः करण का प्राणादि वृत्तियों से धारणीय शरीर है पर वह पञ्च भूत से बना है औ वे दिव्यादिव्य भेद से दो २ प्रकार के हैं इसलिये ये भी दस हुए ये धार्य्य कहलाते हैं योंही पांचो ज्ञानेन्द्रिय के रूप रसादिक भी दिव्यादिव्य भेद से दस प्रकार के हैं ये सब प्रकाश्य कहलाते हैं ॥ ३२ ॥

अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम् ।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम् ॥ ३३ ॥

बुद्धि मन औ अहंकार ये तीनों अन्तःकरण कहलाते हैं औ बचे दस प्रकार के इन्द्रिय बाह्यकरण कहलाते हैं। अन्तःकरण के

* जिन का प्रत्यक्ष केवल योगियों हीं को होता है वे दिव्य कहलाते हैं और जो स्थूल हैं उन्हें अदिव्य कहते हैं ।

विषय पहुंचाना बाह्य करण ही का काम है और बाह्य करण केवल वर्तमान ही विषय पर चल सकते हैं पर अन्तःकरण तीनों काल के विषयों पर। स्पष्ट है इस लिये उदाहरण नहीं लिखा ॥ ३३ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाविशेषविषयाणि ।
वाग् भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्चविषयाणि॥३४॥

इन सबों में ज्ञानेन्द्रियों के स्थूल औ सूक्ष्म * दोनों ही विषय हो सकते हैं वाणी का केवल शब्द ही विषय है औ अव शिष्ट वायु उपस्थ, पाणि, पाद इन चारों इन्द्रियों के पञ्च भूतात्मक घटादि विषय हैं ॥ ३४ ॥

सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात् ।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥३५॥

मन और अहंकार सहित केवल बुद्धि ही सब विषयों का अवगाहन करती है इस लिये प्रधान, ज्ञान का स्थान केवल अन्तःकरण ही है और सब तो इसी के द्वार हैं ॥ ३५ ॥

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः ।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥३६॥

यों ये सब अहंकारादिक प्रत्येक पदार्थ को एक दूसरे के आगे प्रकाशित कर कर परम्परा से अन्त में बुद्धि को सौंप देते हैं। यद्यपि इन सबों के स्वभाव परस्पर विलक्षण हैं तो भी सब मिल जुल के एक ही काम करते हैं जैसे बत्ती, तेल औ अग्नि तीनों भिन्न भिन्न स्वभाव के हैं पर मिलजुल के उजाले का एक ही काम करते हैं ॥ ३६ ॥

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः ।

* सूक्ष्म शब्दादिक केवल योगियों के ज्ञानेन्द्रिय के विषय होते हैं।

सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ॥३७॥

इस रीति परम्परा से सब का सहारा पाकर केवल बुद्धि ही पुरुष के सब भोगों का साधन करती है * और फिर वही प्रकृति औ पुरुष के दुर्लक्ष्य भेद को भी बोधित करती है इस लिये भोग और मोक्ष इन दोनों के साधन में तत्पर केवल बुद्धि ही प्रधान है ॥३७

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः ।
एते स्मृता विशेषाः, शान्ताघोराश्च मूढाश्च ॥ ३८ ॥

(अब करण के प्रकरण को पूरा कर के विशेषा विशेष प्रकरण आरम्भ करते हैं)

पांचों शब्दादि तन्मात्र अविशेष कहलाते हैं क्योंकि वे अति सूक्ष्म हैं, औ सुख दुःख तथा मोह का कोई विशेष चिन्ह उन में नहीं पाया जाता पर इन पांचों से पांचों भूतों की उत्पत्ति होती

---

* ज्ञानेन्द्रिय आलोचन कर के मन को विषय सौंप देते हैं, औ मन मनन कर के अहंकार को विषय सौंप देता है, औ अहंकार अभिमान कर के बुद्धि को विषय सौंप देते हैं तब बुद्धि के विषयानुकूल त्रिगुण वाली सत्व गुण का कुछ उद्रेक होता है तब बुद्धि विषयाकार हो जाती है फिर अति प्रकाशमान पुरुष संयोग से बुद्धि प्रकाशित हो जाती है, और बुद्धि का प्रतिबिम्ब पुरुष में पड़ता है इस लिये उस में भी विषयों का दृढ़ परम्परा सम्बन्ध पहुंचता है इसी कारण आत्मानिर्लेप भी विषयों में लिप्त सा जान पड़ता है औ बुद्धि जड़ भी प्रकाशवाली सी जान पड़ती है (तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ते सरसीव तटद्रुमाः) (यथाहि केवलो रक्तः स्फटिको लक्ष्यते जनैः। रञ्जकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुषः)

है * इन में तीनों गुणों के भिन्न २ सुख, दुःख, मोह लघुता, चञ्चलता, गुरुता आदि विशेष पाये जाते हैं, इसलिये ये विशेष कहलाते हैं ॥ ३८ ॥

सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः ।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्त्तन्ते ॥३९॥

सूक्ष्म विशेष अर्थात् लिङ्गशरीर, मातापितृज विशेष अर्थात् यह स्थूल देह (यह माता पितृज इस लिये कहलाता है कि, मा के अंश से रोम रुधिर औ मांस तथा पिता के अंश से स्नायु अस्थि औ मज्जा बनती हैं औ वही मिलके यह शरीर होता है) औ प्रभूत विशेष अर्थात् महाभूत (इस से घटादि सब आगये) ये तीन प्रकार के विशेष कहलाते हैं। इन में मातापितृज तो मृत्यु होने से छूट जाते हैं औ भस्मादि रूप हो जाते हैं परन्तु सूक्ष्म जब तक मोक्ष न हो तब तक स्थिर रहते हैं ॥ ३९ ॥

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ॥४०॥

यह सूक्ष्म शरीर जो आदि सर्ग में प्रकृति से उत्पन्न किया गया है, जो ऐसा सूक्ष्म है कि किसी का रोका रुका नहीं सक्ता शिला के भीतर भी घुस जा सकता है, जो सृष्ट्यादि से मोक्ष तक स्थिर रहता है औ जो महत्तत्व, अहङ्कार एकादशेन्द्रिय, औ पञ्चतन्मात्र स्वरूप है वह बिना स्थूल के आश्रय अकेला भोग नहीं करसकता इसलिये संस्कार के अनुसार स्थूल शरीर के द्वारा भोग करते हैं।

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा छाया ।

---

* शब्द से आकाश—शब्द स्पर्श दोनों से वायु—शब्द स्पर्श रूप इन तीनों से तेज—शब्द, स्पर्श, रूप, रस इन चारों से जल औ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।

तद्वद्विनाविशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम् ॥४१॥

जैसे आश्रय बिना चित्र नहीं, औ जैसे स्थाणु (सूखा पेड़) आदि के बिना छाया नहीं वैसे स्थूल शरीर बिना सूक्ष्म नहीं रह सकता ॥ ४१ ॥

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन ।
प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद्व्यवतिष्ठते लिङ्गम् ॥४२॥

यह प्रकृति का अद्भुत परिणाम सूक्ष्मशरीर पुरुषार्थ के कारण अपने पूर्व पूर्व के धर्माधर्मादि के अनुसारदाये स्थूल शरीर द्वारा नट की भांति मनुष्य पशु आदि भिन्न भिन्न भूमिकाओं का धारण करता है ॥ ४२ ॥

सांसिद्धिकाश्चभावाः प्राकृतिका वैकृतिकाश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः ॥४३॥

स्वभावसिद्ध अथवा उपाय से हुए धर्मादिक लिङ्ग शरीर के आश्रय से रहते हैं और कललादिक स्थूल शरीर के आश्रय से रहते हैं (मा के गर्भ में शरीर की प्रथम अवस्था कलल (कीच) है फिर बुलबुला, मांस, गांठ, आदि होते होते बाल्य, यौवन हो कर वार्द्धक्य तक होता है फिर क्रमि, विड् भस्मादि) ॥ ४३ ॥

धर्मेण गमनमूर्द्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण ।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥ ४४ ॥

धर्म से ऊंची गति होती है अधर्म से नीची गति होती है ज्ञान से मोक्ष होता है, औ अज्ञान से बंध होता है ॥ ४४ ॥

वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद्रागात्।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात् तद्विपर्यासः ॥ ४५ ॥

जिसे आत्मज्ञान न हो कर केवल वैराग्य ही हो जाता है

उसका प्रकृति में (मन बुद्धि आदि में) लय हो जाता है। जिसे सांसारिक पदार्थों मे अनुराग होता है उसे सांसारिक भोग भोगने पड़ते हैं। जिसने यह स्थिर किया कि जो ईश्वर चाहते हैं वही होता है उसे अपने मनोरथ सिद्ध न होने का दुःख नहीं। औ जिसे ऐसा निश्चय नहीं उसे इच्छाभिघात अर्थात् इच्छानुसार फल न होने से दुःख होता है ॥ ४५ ॥

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्द्दात् तेषां भेदास्तु पञ्चाशत् ॥४६॥

यह बुद्धि का सर्ग (सृष्टि) विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि औ सिद्धि नामक है। इनमें सत्त्वादि गुणों के कम हेर होने से पचास भेद होते हैं। (यह सविस्तर आगे कहे जायेंगे) ॥ ४६ ॥

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाष्टधा सिद्धिः ॥४७॥

विपर्यय पांच प्रकार का है, इन्द्रियों में विकार होने से अशक्ति अट्ठाईस प्रकार की होती हैं, तुष्टि नव प्रकार की औ सिद्धि आठ प्रकार की ॥ ४७ ॥

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः ॥ ४८ ॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष औ अभिनिवेश ये पांच विपर्यय कहलाते हैं इन्हीं के दूसरे नाम क्रम से तम, मोह महामोह तामिस्र औ अन्धतामिस्र हैं। परन्तु इन प्रत्येक में भी एक एक के अनेक अनेक भेद हैं जैसे प्रकृति, महत्तत्व अहङ्कार, औ पञ्चतन्मात्र इन आठ जड़ों को आत्मा समझना आठ प्रकार का तम है। आठ प्रकार के ऐश्वर्य * से जो आठ प्रकार का अभि-

* अणिमा, महिमा, गरिमा लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

मान होता है वही आठ प्रकार का मोह है। दिव्य औ अदिव्य के भेद से दस प्रकार के शब्दादि में आसक्ति दस प्रकार का महामोह है आठ अणिमादि औ दस दिव्यादिव्य शब्दादि इन के विषय में जो वही अठारह प्रकार तामिस्र है। और इन्हीं अठारहों भोग्यको कोई नष्ट न करे इस प्रकार का भय ही अठारह प्रकार का अन्धतामिस्र है ॥ ४८ ॥

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा ।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम् ॥४९॥

पांच प्रकार के विपर्य्यय तो कहे गये अब अशक्ति का निरूपण करते हैं। मन को जोड़ के ग्यारह प्रकार के इन्द्रिय हैं उन के बेकाम होने से जो बुद्धि में असमर्थता होती है वह ग्यारह अशक्ति हुई ९ औ सत्रह प्रकार की अशक्ति बुद्धि की अपनी निज हैं अर्थात् जो आगे नौ तुष्टि औ आठ सिद्धि कहीं जायेंगी उन में उलट फेर होने से सत्रह प्रकार की अशक्ति होती हैं। यों सब जोड़ के (११+९+८) अट्ठाईस अशक्तियां हुईं ॥ ४९ ॥

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः ।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः॥५०॥

जब कोई पुरुष आत्मा को प्रकृति भिन्न समझ के भी उस के साक्षात् के लिये यत्न नहीं करता है औ व्यर्थ निश्चयों में

९ देख न सकना, सुन न सकना, गन्ध को न समझ सकना, स्वाद न जानना, स्पर्श न जानना, (वा कोढ़ो आदि होजाना) बोल न सकना, बे हाथ होना, बे पांव होना,, नपुंसक होना, मलावरोध में असमर्थ होना (वा उदावर्त्तादि रोग से ग्रस्त होना) औ मन्द होना।

सन्तुष्ट रहता है उस को वे आध्यात्मिकी तुष्टियां कहलाती हैं उन के क्रम से प्रकृति, उपादान, काल औ भाग्य नाम हैं। तहां, विवेक होना भी एक प्रकार की प्रकृति ही की अवस्था है औ प्रकृति अपनी अवस्थाओं का परिवर्तन करती करती एक दिन स्वयं इस अवस्था को भी पा ही लेगी तब ध्यानादि करने से क्या ? यों सन्तोष हो जाने को प्रकृति नामक तुष्टि कहते हैं औ इसी का नाम अम्भ भी है। 'सन्यास लेने ही से विवेक हो जायेगा तब सन्यास को और यत्न करना व्यर्थ है' यों सन्तोष हो जाने को उपादान नामक तुष्टि कहते हैं औ इसी का नाम सलिल भी है। 'काल पाके आप ही विवेक होगा सब काल के हाथ है क्यों बहुत यत्न करना, यों सन्तोष हो जाने को काल नामक तुष्टि कहते हैं औ इसी का नाम ओघ भी है । 'भाग्य में होगा सो होगा यत्न करना व्यर्थ है, यों सन्तोष हो जाने को भाग्य नामक तुष्टि कहते हैं' । औ इसी का नाम वृष्टि भी है ।—

जैसे चार आध्यात्मि की तुष्टियां हुईं वैसेही पांच बाह्य तुष्टियां हैं। उनका विवरण यों है कि जब किसी पुरुष ने अपने प्रकृति महत्तत्वादि ही को आत्मा समझ रक्खा है तब उस को जो शब्दादि विषयों में वैराग्य होता है इसे भी तुष्टि कहते हैं । यद्यपि विषय भेद से यह तुष्टि पांच प्रकारकी हो सकी है तथापि इस तुष्टि के पांच कारण हैं इसलिये कारण भेद से यह पांच प्रकार की है। अर्जन करने में बड़ा कष्ट होता है, रक्षा करना और कठिन है, विषयों का नाश एक दिन हो ही जाता है, ज्यों ज्यों भोग करते हैं त्यों त्यों इच्छा बढ़ती जाती है, औ बिना दूसरे को कष्ट दिये सुख नहीं भोग सकते ये ही पांच भाव वैराग्य के कारण हैं । इस लिये इनके भेद से वे तुष्टियां भी पांच प्रकार की हैं। क्रम से इन के पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमाम्भ औ उत्तमाम्भ नाम हैं ॥ ५० ॥

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः ।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेःपूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥५१॥

पढ़ना, अर्थ समझना, विचारना, सत्सङ्ग करना, ज्ञान को शुद्ध करना औ तीनों प्रकार के दुःखों का त्रिविध नाश ये आठ प्रकार की सिद्धियां हैं इन्हीं के तार, सुतार, तारतार, रम्यक, सदामुदित, प्रमोद मुदित औ मोदमान नाम हैं ॥ ५१ ॥

नविनाभावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः ।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधःप्रवर्त्तते सर्गः॥५२॥

सृष्टि (सर्ग) दो प्रकार की हैं, बुद्धि की सृष्टि (प्रत्यय सर्ग वा भाव) औ भूतादि की (तन्मात्र सर्ग वा लिङ्ग) बुद्धि की सृष्टि का जंजाल अभी कह चुके हैं अब भूतादि सर्ग कहेंगे। यहां यही दिखलाया जाता है कि बुद्धि सर्ग के बिना तन्मात्र सर्ग संसरण औ तन्मात्र सर्ग बिना बुद्धि सर्ग भी संसरण नहीं कर सक्ता इसलिये तन्मात्र औ प्रत्यय दोनों ही सर्ग प्रवृत्त होती हैं।

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥५३॥

देवसृष्टि आठ प्रकार की है * १ ब्राह्म, २ प्राजापत्य, ३ ऐन्द्र, ४ पैत्र्य, ५ गान्धर्व, ६ याक्ष, ७ राक्षस, और ८ पैशाच। तिर्यग्योनि की सृष्टि पांच प्रकार की है—१ कीटि कीट, २ पेट, से घिसट के चलने वाले, ३ * पशु, ४ पक्षि और ५ स्थावर। मनुष्य सृष्टि एकही प्रकार की है (यद्यपि ब्राह्मण आदि भेद

* जिन की पोंछ में भीतर अस्थिमांस और ऊपर रोम हों उसे पशु कहते हैं।

से, भी काले गोरे आदि के भेद से उस में भी अनेक भेद हो सक्ते हैं तो भी जितना पशु और पक्षी में भेद है उतना नहीं है इसलिये यहां एक ही प्रकार कहा है) यह संक्षेप से भौतिक सृष्टि हुई।

ऊर्द्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तः॥ ५४॥

ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त की सृष्टि में जिन में सत्व गुण प्रधान है वे उत्तम हैं और उन के ऊंचे स्थान हैं, जिन में रजोगुण प्रधान है वे मध्यम हैं और उन के मध्यम स्थान हैं, जिन में तमोगुण प्रधान है वे अधम हैं और उन के नीचे स्थान हैं॥ पौराणिक मत से ऊपर के लोक स्वर्ग लोक कहलाते हैं वहां सात्विक सृष्टि है, मध्यम लोक यही भूमि है वहां राजस सृष्टि है, और नीचे के लोक पाताल हैं वहां तामस सृष्टि है *॥५४॥

तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।
लिङ्गस्याविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन॥ ५५॥

† इसी मध्यम लोक अर्थात् मृत्युलोक में चेतन को अनेक प्रकार के दुःख तो भोगने पड़तेही हं पर प्रधान जरा और मरण का दुःख भोगना पड़ता है। जरा बुढ़ौती को कहते हैं पर यहां जरा से मरण के पहले शरीर के अवयवों के विकृत

*यद्यपि एक एक लोक में भी सात्त्विक राजस तामस सभी प्रकार के लोग पाये जाते हैं तो भी प्रधानता लेके लोक विभाग किया है।

† लिङ्गशरीर से स्थूल शरीर के वियोग होने को मरण कहते हैं इस में न आत्मा का नाश है न लिङ्गशरीर का— यहां यह शङ्का होती है कि पहले कहा है बिना स्थूल शरीर

होने से तात्पर्य है। चेतन यद्यपि निर्लेप है तो भी वह पुरुष है अर्थात् लिङ्ग शरीर से सम्बन्ध रखता है इस लिये दुःखी समझा जाता है। जब तक लिङ्ग शरीर की निवृत्ति नहीं होती है * तब तक—स्वभाव से वह दुःख भोगना ही पड़ता है।

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्य्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थं इव परार्थं आरम्भः॥५६

यह महत्तत्त्व से ले कर विशेष भूत † तक प्रकृति की की हुई सृष्टि है। और जैसे कोई भात बनाने के लिये प्रवृत्त हो तो भात सिद्ध होने पर अपना उद्योग बन्द कर देता है वैसे ही प्रकृति प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये यह कर रही है जब जिस का मोक्ष हुआ फिर उस से प्रकृति छूट जाती है॥ ५४॥

यहां शङ्का हो सक्ती है कि प्रकृति तो जड़ है उस का उद्योग करना कैसे सम्भव है! इस पर कहते हैं।

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥५७

लिङ्ग शरीर नहीं रह सकता; तो मरण के अनन्तर स्वर्ग नरक में लिङ्ग शरीर किस आश्रय से! रहैगा इस का उत्तर यह है कि मरण के साथ ही एक दूसरा शरीर मिलता है उसे आतिवाहिक शरीर कहते हैं वह वायु मय है उसी को भोग शरीर भी कहते हैं, वह भी एक स्थूल शरीर ही का भेद है।

* लिङ्ग शरीर के नाश से मोक्ष होता है।

† पृथिवी, जल तेज, वायु, आकाश।

जैसे दूध जड़ है तो भी बच्चे को पालन करने में उस का उद्योग है वैसे ही प्रकृति का भी पुरुष के मोक्ष के लिये उद्योग है। फलित यह हुआ कि प्रकृति का ऐसा स्वभाव ही है ॥ ५७ ॥

औत्सुक्य निवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्त्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्त्तते तद्वत्व्यक्तम् ॥ ५८ ॥

* जैसे कोई मनुष्य अपने अभिलाष पुराने के लिये किसी काम में लग जाता है वैसेही प्रकृति भी पुरुष के मोक्ष की लिये लग रही है ॥ ५८ ॥

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी तथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्यविनिवर्त्तते प्रकृतिः ॥५९॥

‡ जैसे नाचने वाली समाज को जब पूरा पूरा अपना नांच दिखला लेती है तब आप ही निवृत्त हो जाती है, वैसे ही जब प्रकृति अपने को पुरुष के आगे प्रकाशित कर देती है तब आप ही हट जाती है ॥ ५९ ॥

यह हो सकता है कि प्रकृति को भी कदाचित् पुरुष से कोई बात हो सक्ता हो इस पर कहते हैं।

---

* यह शङ्का न करना कि "प्रकृति तो बांधती है मोक्ष के लिये कहां लगी है" ठीक है प्रकृति ही ने बांधा है पर यह जितना यज्ञ, जप, योग, ज्ञान, अभ्यास किया जाता है यह भी तो प्रकृति ही न करती है। इस लिये ठीक कहा है।

‡ तात्पर्य यह है कि इस पुरुष ने जन्म जन्म में शूकर कूकर की योनि के दुःख भोगे यह भी प्रकृति ही के कारण, फिर किसी संस्कार से मनुष्य जन्म हुआ सो भी प्रकृतिही के कारण तब सत्सङ्गादि लाभ होना प्रेम भक्ति ज्ञान सदाचार होना यह

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति ॥ ६० ॥

* प्रकृति तो पुरुष के अनेक प्रकार उपकार करती है और पुरुष कुछ उपकार नहीं करता, प्रकृति गुणवती पुरुष निर्गुण है इस लिये प्रकृति के व्यापार का पुरुष की ओर से कोई फल नहीं ॥

नाचनेवाली के उदाहरण से कोई यह न समझे कि प्रकृति चाहेगी तो फिर भी कौतुक दिखलावेगी इसलिये कहते हैं।

प्रकृतेः सुकुमारतरं नकिञ्चिदस्तीतिमे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥ ६१ ॥

भी प्रकृति ही के कारण. फिर धीरे धीरे ज्ञान पड़ना कि यह प्रकृति है यह पुरुष है यह भी प्रकृति ही के कारण, और फिर प्रकृति पर अन्तिम वैराग्य होना और पुरुष का पुरुष रूप में ही डूबे रहजाना यह भी प्रकृति ही के कारण हुआ अर्थात् प्रकृति सब कौतुक दिखला आपही हट गई।

*इसी भावार्थपर आनन्द मञ्जरी में एक भजन है। लखो यह दुलहा दुलहिन कैसे। अति बेमेल विचित्र भाव के कहूं लखे नहिं ऐसे ॥ लखो० ॥ दुलहिन अतिही सुघर सुहावन जोबन उमग से। दुलहा याहि लखत चुप को है बैठ्यो उजबक जैसे ॥ लखो० ॥ दुलहिन अति गुनवती चतुर त्यों हाव भावहू वैसे। दुलहा गुन-की बात न जानै पूरो गोबर गनेसे। लखो ०।। सुकवि एक दुलहिन बहु दुलहा पै सबरे एकैसे। दुलहिन ही बहु नाचत गावत वे सब जैसे के तैसे ॥ लखो० ॥

(इस ग्रन्थ में भजन ही भजन हैं)

पण्डित ईश्वरकृष्ण कहते हैं कि हमारी समझ में प्रकृति से बढ़ के लज्जावन्ती और कोई न होगी क्योंकि प्रकृति ने जहां समझा कि किसी पुरुष ने मुझे देख लिया कि फिर उसके सामने नहीं आती॥ फलित यह हुआ कि जैसे कोई राजपत्नी रनवास के झरोखे में बैठ सिंगार करती हो तो जहां तक उस को यह विदित रहता है कि मुझे कोई पुरुष नहीं देखता है तहां तक तो वह सब चेष्टा करती रहती है और जहां उस ने समझा कि मुझे पर पुरुष ने देखा बस झट खिड़की बन्द कर ऐसी चम्पत होती है कि फिर सामने नहीं आती। वही दशा प्रकृति की है मुझे पुरुष ने देखा यह समझे पीछे फिर उस पुरुष के सामने नहीं आती। ॥ ६१ ॥

*तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरतिकश्चित्
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥६२

इस लिये वस्तुतः पुरुष न बंधता है, न मुक्त होता है औ न संसार के सुख दुःख भोगता है किन्तु प्रकृति ही अनेक पुरुषों के आश्रय से बंधती है छूटती है और सुख दुख पाती है। जैसे वस्तुतः नौकर हारते जीतते हैं पर राजा हारा राजा जीता यों कहा जाता है वैसे ही प्रकृति के बन्ध मोक्ष से पुरुष बंधा पुरुष छूटा यह कहा जाता है ॥ ६२ ॥

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रतिविमोचयत्येकरूपेण॥ ६३ ॥
एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।

* "यथा त्वक्‌दृढाश्लिष्टरटहं विच्छिद्य रच्यते। तथा सदोष-प्रकृतिविच्छिन्नोयं न शोचति"।

अविपर्य्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥६४॥

प्रकृति सातरूप से तो आत्मा को बांधती है और एक रूप से छुड़ाती है। तेईसवीं कारिका में बुद्धि के आठ धर्म कहे हैं उनी में तत्त्वज्ञान से छुड़ाती है और बचे सात से बांधती है ॥६३॥

ऐसे ही तत्त्व का * अभ्यास करने से, मुझ में कोई क्रिया नहीं है, मैं कर्त्ता नहीं हूं, और मेरा कुछ नहीं है इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है, इस में सन्देह और भ्रम न रहने से यह विशुद्ध अर्थात् तत्त्व साक्षात्कार सहित होता है और उस समय फिर संशय अथवा भ्रम होने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती ॥ ६४ ॥

तेन निवृत्तप्रसवामर्थात् सप्तरूपविनिवृत्ताम् ।
प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः सुस्थः॥६५॥

इस तत्त्वज्ञान साक्षात्कार से प्रकृति का नवीन बन्धसामग्री का उत्पन्न होना मिट जाता है और पूर्वोक्त सात रूप छोड़ प्रकृति का केवल तत्त्वज्ञान ही स्वरूप रह जाता है तब उस प्रकृति को, रजोगुण तमोगुण की कलङ्क से रहित केवल शुद्ध तत्त्व गुण वाली बुद्धि से प्रतिबिम्बित, पुरुष साक्षी की भांति देखता है ॥ ६५ ॥

दृष्टा मयेत्युपेक्षक एको दृष्टाहमित्युपरमत्यन्या ।
सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य ॥६६॥

मैंने देख ली यों एक उपेक्षा करता है और मैं देखी गई यों दूसरी हट जाती है इस लिये यद्यपि सृष्टि का कारण प्रकृति

* स तु दीर्घ कालनैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़भूमिः। योगसूत्र ।

पुरुष का संयोग रहता है तो भी फिर जिस में भांति भांति का भोग हो वह सर्ग नहीं होता ॥ ६६ ॥

सम्यग् ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्कारवशात् चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः॥६७॥

अब यह शङ्का हो सक्ती है कि जब तत्त्व ज्ञान होगया और अहंता ममता जाती रही और जब फिर पापपुण्य का उत्पन्न होना और कर्म का फल पाना बन्ध हो जाता है ᪴ तब फिर कुछ दिन शरीर कैसे रहजाता है। क्योंकि शरीर का रहना और समय विशेष पर छूटना यह भी कर्मफल है सो कैसे हुआ। और जब उस को इच्छा और यत्न हो न रहा तो सांस खींचना छोड़ना और पांव उठाना धरना और मुंह में आये पदार्थ को खा जाना इत्यादि व्यापार कैसे होंगे ? इसी पर कहते हैं कि तत्त्व ज्ञान हो जाने पर जो अनायास धर्म अथवा अधर्म बन गया उस का तो कुछ फल नहीं परन्तु तत्त्वज्ञान होने के पहले जो धर्म वा अधर्म किया है उस का जो जो फल होना स्थिर हो गया है अथवा जितने दिन जीना स्थिर हो गया है सो हो होगा और आगे नयासंस्कार उत्पन्न होना यद्यपि बन्द हो गया है तथापि पुराने संस्कार हो से उस का सांस लेना चलना खाना होता है इस में इच्छा और यत्न की आवश्यकता नहीं। प्रत्यक्ष में भी देखते हैं कि घोर निद्रा में भी लोगों के मुह से बिना पूर्ण इच्छा और विवेक भी वाक्य ठीक निकलता है श्वास प्रश्वास भी होता है करवट भी की जाती है कोई पैर खजुलावे तो समेट भी लिया जाता है। यों संस्कार के कारण शरीर स्थिर रहने में उदाहरण दिखलाते हैं कि जैसे

᪴ ६५वीं कारिका में स्पष्ट है।

कुम्हार का चाक घूमता हो और कोई उस से घुमाने को मना कर दे तब भी उस के हाथ हटा लेने पर भी जितना वेग भर गया है उसी अनुसार कुछ देर तक चाक घूमता रहता है फिर धीरे धीरे बन्द होता है वैसे ही शरीर की दशा है ॥ ६७ ॥

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तेः ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥ ६८ ॥

यों नवीन कर्मों का फल तो पहले ही मिट गया और संस्कार वश से जो कुछ आभासमात्र शरीर के साथ व्यापार था सो भी शरीर छूट जाने पर नष्ट हो जाता है तो उसी समय प्रकृति चरितार्थ हो जाती है अर्थात् इस दशा तक पहुंचा देना ही प्रकृति का काम है सो प्रकृति कर चुकती है और निवृत्त हो जाती है तब पुरुष का कैवल्य होता है; उस समय पुरुष, बुद्धि की वृत्तियों के प्रतिबिम्बों से रहित, केवल ही केवल रह जाता है इसलिये इसे कैवल्य कहते हैं। यह ऐकान्तिक कैवल्य होता है अर्थात् इस समय और कोई दुःख का लेश भी नहीं रहता और यह आत्यन्तिक भी होता है अर्थात् फिर कभी किसी दुःख के उत्पन्न होने की भी सम्भावना नहीं रहती । यों प्रथम और द्वितीय कारिका से जिस का उपक्रम किया उस का यहां उपसंहार किया ॥ ६८ ॥

पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम् ।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम् ॥ ६९ ॥

अब यह दिखलाते हैं कि यह उपदेश हमने अपने मनमाना नहीं किया है किन्तु बड़े बड़े आचार्यों के द्वारा पाया है ।

यह गुह्य अर्थात् विवेकियों के जानने योग्य तत्वज्ञान महर्षि

कपिल ने कहा था। * यह ऐसा है कि जिस मे प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की चिन्ता की जाती है ॥ ६९ ॥

एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम् ॥७०॥

इस † पवित्र और मुख्य उपदेश को कपिल मुनि ने कृपाकर के आसुरि को दिया, आसुरि ने पञ्चशिख को दिया और उसने बहुत प्रकार संसार मे फैलाया ॥ ७० ॥

शिष्यपरम्परयागतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्य्याभिः ।
संक्षिप्तमार्यमतिना, सम्यग् विज्ञाय सिद्धान्तम् ७१

फिर शिष्य परम्परा से इसी उपदेश को दिव्य बुद्धिवाले ईश्वर कृष्ण (ग्रन्थकार) ने पाया और भली भांति सिद्धान्त समझकर आर्य्या छन्दों में संक्षेप से कहा है ॥ ७१ ॥

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य ।
आख्यायिकाविरहिताःपरवादविवर्ज्जिताश्चापि ७२

इन ‡ सत्तर कारिकाओं में जो निरूपण किया गया है वह साठों पदार्थों का निरूपण है। केवल आख्यायिका औ परवाद इसमें नहीं है।

जो साङ्ख्य शास्त्र में फैला के कहे जाते हैं वे साठ विषय

---

* जिस मे उत्पत्ति स्थिति संहार की चर्चा है। वा जिस के लिये, वा जिस के जानने से इत्यादि।

† पवित्र अर्थात् दुःखत्रयजनक पाप से छुड़ानेवाला।

‡ यद्यपि इस के पहले एकहत्तर ७१ कारिका हो चुकी हैं और केवल शास्त्र निरूपण लें तो अड़सठ ही कारिका में हुआ तो भी सत्तर के लग ढग होने से सत्तर कहा ॥

ये हैं, —पुरुष के सम्बन्ध में १ अन्यत्व, २ अकर्तृत्व, ३ बहुत्व,—प्रकृति के सम्बन्ध में—४ एकत्व, ५ अर्थवत्त्व, ६ परार्थत्व,—प्रकृति पुरुष दोनों के सम्बन्ध में—७ अस्तित्व, ८ योग, ९ वियोग, स्थूल सूक्ष्म के सम्बन्ध में—१० स्थिति, यों १० तो ये हुए और विपर्यय ५, तुष्टि ९, अशक्ति २८, औ सिद्धि ८ सब जोड (१० + ५+९+२८+८=६०) साठ हुए ॥ साङ्ख्यदर्शन की चौथी अध्याय में "राजपुत्रवत्तत्वोपदेशात्" इस प्रथम ही सूत्र से एक एक इतिहास की उदाहरण के साथ एक एक बात सिद्ध की हैं इन्हे आख्यायिका कहते हैं।

श्रीमद्भागवत के ११ स्कन्ध में भी प्रायः यही है। सांख्य दर्शन की पांचवीं अध्याय में मंगलाचरणम् शिष्टा चारात् इस प्रथम सूत्र से ही दूसरे की उक्तियों का खण्डन किया है वही परवाद है।

(इति साङ्ख्यतरङ्गिणी)

उपसंहार।

दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरागिजन।

यह सांख्य की कारिकाओं की भाषा टीका आप लोगों की सेवा में निवेदित है इसका स्वीकार कीजिये तो मैं श्रम सफल समझूं। यह मुझ से अवश्य आप लोग पूछ सक्ते हैं कि जिस ग्रन्थ का लिखना सन् १८८२ में आरम्भ किया वह आज ८ वर्ष के अनन्तर प्रकाशित हुआ इतनी अकर्मण्यता और दीर्घसूत्रता क्यों! इस प्रश्न पर चुप हो सिर झुका रहना ही मेरा उत्तर है। क्या करूं जगन्नियन्त्री महामाया का मेरे ऊपर ऐसाही अनुग्रह है कि मेरे कार्य और मनोरथों के शीघ्र फल नहीं होते। मेरा सामवतनाटक भी बनने के आठ वर्ष के अनन्तर छपा और ललिता नाटिका आदि ग्रन्थ भी बिलम्ब ही से छपे हैं और अभी तक पातञ्जलप्रतिबिम्ब, सांख्यसुधा, श्लोकबद्ध रेखागणित, आर्यभाषासूत्रधार, वेणीसंहारक नाटकानुवाद प्रभृति बारह तेरह ग्रन्थ पड़े हैं जिन में कोई पन्द्रह वर्ष का बना है कोई आठ का और कोई और कम का। मुझ को इसी का आश्चर्य है कि दुःखद्रुम कुठार, भाषातर्कसंग्रह, कथाकुसुम, रत्नाष्टक प्रभृति कई ग्रन्थ झट पट प्रकाशित हो गये।

यदि महाराजकुमार बाबूरामदीन सिंह बारम्बार मुझे उत्तेजित न करते कि "थोड़े श्रम के लिये ग्रन्थ पड़ा है कापी भेज दीजिये तो प्रकाशित किया जाय" तो इस ग्रन्थ का आज भी अवसर न आता। मैं और किसी पर कोई दोष नहीं लगा सक्ता यह मेरा ही आलस्य दोष है। हां "केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि"।

ग्रन्थकार लोग अपना पूरा परिचय नहीं देते हैं इसलिये बड़ी हानि होती है यह मैं भूमिका में झलका चुका हूं तथापि मुझे अपने विषय में दो पृष्ठ नष्ट करने में लज्जा होती है इस लिये छोड़ देता हूं। जो कुछ संस्कृत में सामवत में और भाषा में "सुकविसतसई" में लिख चुका हूं वही पर्य्याप्त है।

भागलपुर
१७-१०-८८

किमधिकम
अम्बिकादत्तव्यास।

कपिल ने कहा था। * यह ऐसा है कि जिस मे प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की चिन्ता की जाती है ॥ ६९ ॥

एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम् ॥७०॥

इस † पवित्र और मुख्य उपदेश को कपिल मुनि ने कृपाकर के आसुरि को दिया, आसुरि ने पञ्चशिख को दिया और उसने बहुत प्रकार संसार मे फैलाया ॥ ७० ॥

शिष्यपरम्परयागतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्य्याभिः ।
संक्षिप्तमार्यमतिना, सम्यग् विज्ञाय सिद्धान्तम् ७१

फिर शिष्य परम्परा से इसी उपदेश को दिव्य बुद्धिवाले ईश्वर कृष्ण (ग्रन्थकार) ने पाया और भली भांति सिद्धान्त समझकर आर्य्या छन्दों में संक्षेप से कहा है ॥ ७१ ॥

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य ।
आख्यायिकाविरहिताःपरवादविवर्ज्जिताश्चापि ७२

इन ‡ सत्तर कारिकाओं में जो निरूपण किया गया है वह साठों पदार्थों का निरूपण है। केवल आख्यायिका औ परवाद इसमें नहीं है।

जो साङ्ख्य शास्त्र में फैला के कहे जाते हैं वे साठ विषय

* जिस मे उत्पत्ति स्थिति संहार की चर्चा है। वा जिस के लिये, वा जिस के जानने से इत्यादि।

† पवित्र अर्थात् दुःखत्रयजनक पाप से छुड़ानेवाला।

‡ यद्यपि इन के पहले एकहत्तर ७१ कारिका हो चुकी हैं और केवल शास्त्र निरूपण लें तो अड़सठ ही कारिका में हुआ तो भी सत्तर के लग ढग होने से सत्तर कहा ॥

ये हैं,—पुरुष के सम्बन्ध में १ अन्यत्व, २ अकर्तृत्व, ३ बहुत्व,—प्रकृति के सम्बन्ध में—४ एकत्व, ५ अर्थवत्त्व, ६ परार्थत्व,—प्रकृति पुरुष दोनों के सम्बन्ध में—७ अस्तित्व, ८ योग, ९ वियोग, स्थूल सूक्ष्म के सम्बन्ध में—१० स्थिति, यों १० तो ये हुए और विपर्यय ५, तुष्टि ९, अशक्ति २८, औ सिद्धि ८ सब जोड (१० + ५+९+२८+८=६०) साठ हुए ॥ साङ्ख्यदर्शन की चौथी अध्याय में "राजपुत्रवत्तत्त्वोपदेशात्" इस प्रथम ही सूत्र से एक एक इतिहास औ उदाहरण के साथ एक एक बात सिद्ध की हैं इन्हे आख्यायिका कहते हैं।

श्रीमद्भागवत के ११ स्कन्ध में भी प्रायः यही हैं। सांख्य दर्शन की पांचवीं अध्याय में मंगलाचरणम् शिष्टा चारात् इस प्रथम सूत्र से ही दूसरे की उक्तियों का खण्डन किया है वही परवाद है।

(इति साङ्ख्यतरङ्गिणी)

उपसंहार।

दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरागिजन।

यह सांख्य की कारिकाओं की भाषा टीका आप लोगों की सेवा में निवेदित है इसका स्वीकार कीजिये तो मैं श्रम सफल समझूं। यह मुझ से अवश्य आप लोग पूछ सक्ते हैं कि जिस ग्रन्थ का लिखना सन् १८८२ में आरम्भ किया वह आज ८ वर्ष के अनन्तर प्रकाशित हुआ इतनी अकर्मण्यता और दीर्घसूत्रता क्यों! इस प्रश्न पर चुप ही सिर झुका रहना ही मेरा उत्तर है। क्या करूं जगन्नियन्त्री महामाया का मेरे ऊपर ऐसाही अनुग्रह है कि मेरे कार्य और मनोरथों के शीघ्र फल नहीं होते। मेरा सामवतनाटक भी बनने के आठ वर्ष के अनन्तर छपा और ललिता नाटिका आदि ग्रन्थ भी विलम्ब ही से छपे हैं और अभी तक पातञ्जलप्रतिबिम्ब, सांख्यसुधा, श्लोकबद्ध रेखागणित, आर्यभाषासूत्रधार, वेणीसंहारक नाटकानुवाद प्रभृति बारह तेरह ग्रन्थ पड़े हैं जिन में कोई पन्द्रह वर्ष का बना है कोई आठ का और कोई और कम का। मुझ को इसी का आश्चर्य है कि दुःखद्रुम कुठार, भाषातर्कसंग्रह, कथाकुसुम, रत्नाष्टक प्रभृति कई ग्रन्थ झट पट प्रकाशित हो गये।

यदि महाराजकुमार बाबूरामदीन सिंह बारम्बार मुझे उत्ते-जित न करते कि "थोड़े श्रम के लिये ग्रन्थ पड़ा है कापी भेज दीजिये तो प्रकाशित किया जाय" तो इस ग्रन्थ का आज भी अवसर न आता। मैं और किसी पर कोई दोष नहीं लगा सक्ता यह मेरा ही आलस्य दोष है। हां "केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि"।

ग्रन्थकार लोग अपना पूरा परिचय नहीं देते हैं इसलिये बड़ी हानि होती है यह मैं भूमिका में झलका चुका हूं तथापि मुझे अपने विषय में दो पृष्ठ नष्ट करने में लज्जा होती है इस लिये छोड़ देता हूं। जो कुछ संस्कृत में सामवत में और भाषा में "सुकविसतसई" में लिख चुका हूं वही पर्य्याप्त है।

भागलपुर
१७-१०-८८ } किमधिकम
अम्बिकादत्तव्यास।